ॐ

देवी पूजन की वास्तविकता क्या है ?

अनन्त श्री विभूषित
पूज्य स्वामी श्री परमानन्द जी
महाराज (परमहंस जी)

स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी महाराज

पाछे लागा जाय था, लोक वेद के साथ।
मारग में सद्गुरु मिला, दीपक दीन्हा हाथ॥

।। ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ।।

देवी-पूजन की वास्तविकता क्या है?

लेखक :

परमपूज्य श्री परमहंस महाराज का कृपा-प्रसाद

स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम

ग्राम-पत्रालय- शक्तेषगढ़, जिला-मिर्जापुर, उ०प्र०, भारत

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं- 5, मोगरा लेन (रेलवे सब-वे के पास)

अंधेरी (पूर्व), मुम्बई - 400069, भारत

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया–चित्रकूट

के परम पावन चरणों में

सादर समर्पित

अन्तःप्रेरणा

गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ।।

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वेष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्गुरु.....भारी।।

।। ॐ ।।

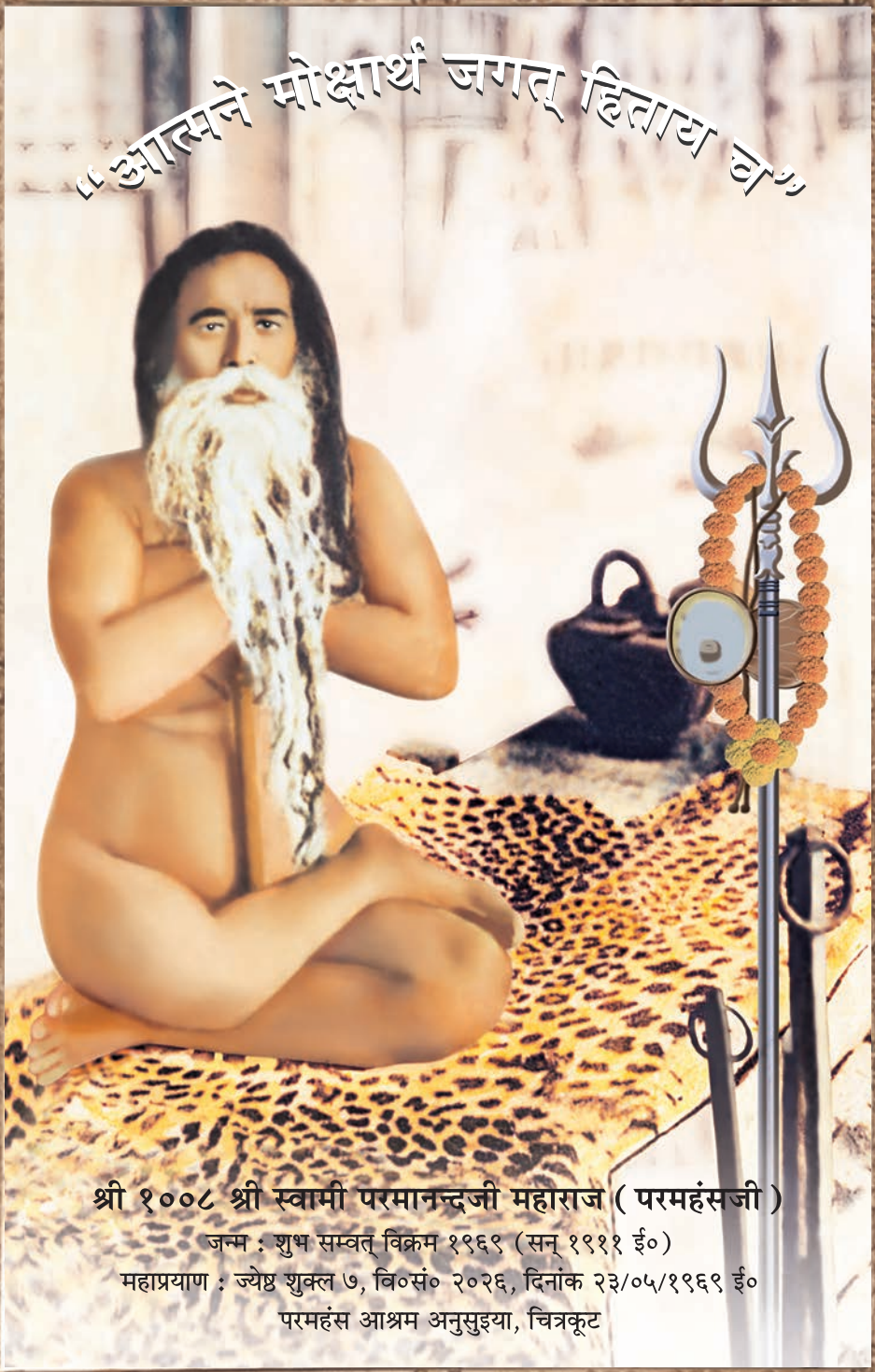

श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्म : शुभ सम्वत् विक्रम १९६९ (सन् १९११ ई०)

महाप्रयाण : ज्येष्ठ शुक्ल ७, वि०सं० २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई०

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट

श्री स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज

(परमहंस महाराज का कृपा-प्रसाद)

देवी-पूजन की वास्तविकता क्या है?

(श्री परमहंस आश्रम शक्तेषगढ़, मीरजापुर में पधारनेवाले भक्तों ने निवेदन किया कि गीता के अनुसार आप कहते हैं कि ब्रह्मा से लेकर यावन्मात्र जगत्, दिति–अदिति की संतानें देवी-देवता, दानव और मानव सभी क्षणभंगुर, दुःखों की खानि और जन्मने-मरने के स्वभाववाले हैं इसलिए भजन एक परमात्मा का ही करना चाहिए; फिर भारत में इतने सारे देवी-देवताओं की पूजा क्यों होती है? दूसरे ने कहा कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी भी काली की पूजा करते थे। किसी ने कहा– आजकल दुर्गा-पूजा का प्रचलन बढ़ रहा है, इसका माहात्म्य बताया जाय। भक्तों की जिज्ञासा पर जनवरी-फरवरी २०१५ के कतिपय दैनिक प्रवचनों से एतद्विषयक पूज्य महाराज जी के विचार प्रस्तुत हैं।)

देखिये, संसार भर के सभी महापुरुष आदिशास्त्र गीता के ही संदेशवाहक रहे हैं। सबका एक ही उपदेश रहा है – संसार में एक हैं तो भगवान, और एक ही है भगवान को प्राप्त करने की विधि। जो चित्त प्रकृति में लगा है, उधर से मोड़कर प्रभु में जोड़ो। अन्य कोई विधि नहीं है। मन जहाँ-जहाँ संसार में उलझा है, वहाँ-वहाँ से हटायें और परमात्मा में लगायें। मन लगाने के कुछ नियम हैं, जैसे– शौच अर्थात् मन-क्रम-वचन से पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान इत्यादि, जिन्हें गीता में क्रमबद्ध बताया गया है। भगवान कहते हैं–

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।। *(गीता, १२/२०)*

अर्जुन! इस धर्ममय अमृत को यथावत् अर्थात् जैसे-जैसे कहा गया है, ठीक वैसा ही जो पालन करेगा, उसके समान प्रिय मेरा संसार में कोई नहीं है। वह भक्तों में भी अति उत्तम भक्त मुझे मान्य है। इस प्रकार पूरी की पूरी गीता धर्ममय अमृत है।

धर्म है क्या? पहले तो मनुष्य भ्रान्तियों में रहता है, पता नहीं कहाँ-कहाँ पर पूजा-पाठ करता है। ये आरम्भिक कक्षायें हैं। श्रद्धा जगाने में कुछ दूर तक ये साथ देती हैं, किन्तु बाद में एक परमात्मा की शरण में, गीतोक्त साधन-पथ पर आना ही पड़ता है। गीता शाश्वत शान्ति, अनन्त जीवन और कभी न विनष्ट होनेवाला घर प्रदान करती है। भारत का सम्पूर्ण अध्यात्म और आत्मस्थिति दिलानेवाला साधन-क्रम इस गीता में स्पष्ट वर्णित है। यह मानवमात्र का धर्मशास्त्र है, विश्वगुरु भारत की सम्पूर्ण खोज है। धर्म के समस्त सिद्धान्त इसमें देखे जा सकते हैं। यह किसी कबीले का शास्त्र नहीं, अपितु मानव-दर्शन है। इसके नियत कर्म का पालन कर मनुष्य परम श्रेय को प्राप्त करता है। इसीलिए भगवान कहते हैं–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। *(गीता, १८/६६)*

यह धर्म, वह धर्म, अर्जुन! इन सब धर्मों की गठरी बनाकर दूर फेंक एकमात्र मेरी शरण हो जा। मैं तूझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक न कर। इसलिए एक परमात्मा की शरण धर्म है और उसकी विधि है गीता।

वेद और 'देवी'

गीताशास्त्र में इतना स्पष्ट निर्देश होने पर भी भारत भर में देवी-पूजन का प्रचलन है। 'देवी–पूजन आधुनिक काल की देन है, गीता शास्त्र के विरुद्ध है, अवैदिक है' के विरोध में अनेक विद्वान ऋग्वेद के *(१०/१२५/१–८)* सूक्त को देवी-उपासना का बताते हैं और इन्हीं में २-४ मंत्रों को और मिलाकर देव्यथर्वशीर्ष सूक्त भी देवी-पूजन के प्रमाण में देते हैं, जबकि ऋग्वेद के *(१०/९०/२)* में है कि सहस्त्रशीर्ष पुरुष **'एवेदम् सर्वम् यद्भूतम् यच्च भव्यम्'**– इस संसार में भूतकाल में जो था, जो है, जो होनेवाला है, वह सबकुछ पुरुष ही है (कोई देवी नहीं)। हिरण्यगर्भ सूक्त में

है– **'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।'** *(१०/१२१/१)*– वह हिरण्यगर्भ परमात्मा **'अग्रे समवर्तत'**– सबसे पहले था और **'जातस्य भूतस्य एकः पतिः आसीत्'**– वही उत्पन्न सब जगत् का एकमात्र स्वामी था। वही इस पृथ्वी और अन्तरिक्ष को धारण करता है। इसके अतिरिक्त हम किस (देवी) देवता के लिए हवि द्वारा पूजन करें?

जहाँ तक ऋग्वेद के दशम मण्डल में देवी सूक्त का प्रश्न है, इस सूक्त की मंत्रद्रष्टा अम्भृण ऋषि की 'वाक्' नाम की विदुषी कन्या थीं जिन्होंने तप द्वारा परमात्मा से अभिन्नता स्थापित कर लिया था। उन्होंने अपनी अनुभूति ८ मंत्रों में व्यक्त किया जैसा कि–

अहं रुद्रेर्भिवसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रा वरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नि अहमश्विनोभा। *(ऋग्वेद, १०/१२५/१)*

अर्थात् मैं रुद्रों और वसुओं के साथ विचरण करती हूँ। मैं आदित्य और विश्वदेवों के साथ रहती हूँ। ठीक वही वर्णन जैसा पहले गीता में भगवान ने अर्जुन को दिखाया था– **'पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।'** *(११/६)* इसी प्रकार अन्य मंत्रों का साम्य भी गीता में देखा जा सकता है।

उपनिषद् और 'देवी'

देवी-पूजन की प्राचीनता और प्रामाणिकता दिखाने के लिए केनोपनिषद् के तृतीय खण्ड में हैमवती उमा का कथानक प्रमाण में बताया जाता है जिसमें है कि जब परब्रह्म ने देवताओं को विजय दिलायी तो देवता उसे अपनी महिमा मानने लगे। परमात्मा उनके समक्ष यक्षरूप में प्रकट हुए और अग्नि को एक तिनका जलाने को कहा, पर वह ऐसा न कर सके। यक्ष ने वायु से एक तिनका उड़ाने को कहा, वह भी असफल रहे। इन्द्र ने यक्ष का परिचय जानना चाहा तो वह यक्ष अन्तर्धान हो गये।

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमाम् हैमवतीं तां होवाच किमेतद् यक्षमिति। *(केनोपनिषद्, ३/१२)*

अर्थात् उसी समय इन्द्र ने आकाश में स्वर्णिम आभावाली एक बहुत सुन्दर स्त्री उमा को देखा और उससे पूछा कि यक्ष कौन था? उसने बताया कि यक्ष स्वयं परब्रह्म थे। यहाँ हैमवती का अर्थ स्वर्णिम आभावाली न लगाकर हिमाचल नरेश की कन्या करके 'स्त्री' शब्द का अर्थ देवी लगाकर कुछ लोग उनकी अलग से पूजा करने लगे, उन्हें परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती मानने लगे, जबकि उन देवी ने अपने से अलग परब्रह्म परमात्मा की ओर इन्द्र को इंगित किया था, अपनी पूजा के लिए नहीं कहा था। यहाँ भी उसी तथ्य को दुहराया गया है, जैसा भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि अर्जुन! जो भी ऐश्वर्ययुक्त, कांतियुक्त और शक्तियुक्त वस्तुएँ है, उन सबको मुझसे उत्पन्न हुआ जान *(गीता, १०/४१)*। अध्याय ७ में उन्होंने कहा कि मुझसे श्रेष्ठ इस संसार में कुछ भी नहीं है।

इस प्रकार विभिन्न देवियों के नाम पर लिखे गये उपनिषद् जैसे– देव्युपनिषद्, सीतोपनिषद्, राधोपनिषद्, त्रिपुरोपनिषद्, दशोपनिषद् इत्यादि विभिन्न विचारकों की रचनायें हैं जिन्हें मनीषियों ने बहुत महत्त्व नहीं दिया है। गीता, वेद और उपनिषद् सर्वत्र एक परमात्मा का ही निर्देशन किया गया है।

स्वामी रामकृष्णदेव ने भी यही उपदेश दिया। उनके बड़े भाई ने उन्हें काली मन्दिर की पूजा-अर्चना के कार्य में नियुक्त कराया था। तोतापुरी जी की शिक्षाओं का उन पर बहुत प्रभाव था। विरक्ति की आशा से सेवा में रहनेवाले अपने शिष्यों से उन्होंने कहा कि त्रेता में जो भगवान राम थे, द्वापर में जो भगवान श्रीकृष्ण थे, उन्हीं की आत्मा मुझमें है। मैं उसी स्वरूप को प्राप्त हूँ। तुमलोग संदेह न करना। इस प्रकार महापुरुष के स्वरूप का ध्यान उनकी शिक्षाओं का मूल था। उनके प्रधान शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी के प्रवचनों में सर्वत्र गीता और उपनिषदों की शिक्षाओं पर चलने का निर्देश मिलता है। इस प्रकार एक परमात्मा से भिन्न उनकी पूजा कदापि नहीं है। आजकल चार वर्णों तथा असंख्य उपजातियों में बँटा भारतीय समाज

एक परमात्मा के स्थान पर अनेक देवी-देवताओं की पूजा कर रहा है। ब्राह्मण सरस्वती, क्षत्रिय दुर्गा, वैश्य लक्ष्मी और शूद्र वनदेवी, भूत-भवानी की पूजा में उलझा हुआ है जिनका नाम तक इस गीता-शास्त्र में नहीं है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर देवी-पूजा का उल्लेख किसी भी युग में देखने को नहीं मिलता। सतयुग में वेदवती नामक ऋषि-कन्या भगवत्प्राप्ति के लिए तप कर रही थी। रावण के द्वारा व्यवधान होते देख उसने अपने शरीर को अग्नि में जलाकर अपनी रक्षा की। देवासुर-संग्राम में देवता लड़े, असुरबालायें लड़ीं; लेकिन देवियाँ एक भी नहीं लड़ीं। हिरण्यकश्यप की बहन होलिका ने अपना पराक्रम दिखाना चाहा तो स्वयं आग में जल गयी। कयाधू का अपहरण इन्द्र ने किया। पृथ्वी माता का अपहरण हिरण्याक्ष ने किया। सती ने अपने अपमान का प्रतिरोध यज्ञ-कुण्ड में अपनी आहुति देकर किया। अत: देवियों के पराक्रम का कोई इतिहास सतयुग में नहीं मिलता।

त्रेतायुग में रावण के अत्याचार से विश्व त्रस्त था। रावण ने **'देव जच्छ गन्धर्व नर किन्नर नाग कुमारि। जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुन्दर बर नारि।।'** उसने देवताओं की, नरों की, नागों की कन्याओं का अपहरण अपने बाहुबल से किया था। असुर-बालाओं में ताड़का लड़ी, सूपनखा लड़ी, अयोमुखी लड़ी, लेकिन देवियों के पराक्रम का कोई भी उल्लेख त्रेता में नहीं मिलता।

द्वापर में भौमासुर (नरकासुर) ने सोलह हजार कन्याओं को बन्दी बना रखा था, जिसमें देवकन्यायें भी थीं। उसने देवमाता अदिति के कानों के कुण्डल छीन लिये थे। जयद्रथ द्रौपदी को लेकर भाग गया था। अर्जुन की अभिरक्षा में द्वारिका की नारियों को कोल-भीलों ने लूट लिया। यहाँ भी देवियाँ सतायी गयी हैं, लूटी गयी हैं। इनकी रक्षा का भार सदैव पुरुषों पर रहा है। हिडिम्बा ने कुछ पराक्रम दिखाया, किन्तु देवियों की सफलता का कोई उल्लेख द्वापर में नहीं मिलता। द्वापर में योगमाया के रूप में एक देवी

का उल्लेख मिलता है नन्द की पुत्री के रूप में। वह श्रीकृष्ण की बहन थी जो कंस के हाथों से छूटकर आकाश में अष्टभुजा देवी के रूप में विन्ध्य पर्वत पर आ गयीं जिन्हें एक दूसरे शुम्भ-निशुम्भ और वैप्रचित नामक दैत्यों का वध करना था। किन्तु विन्ध्य-क्षेत्र के इतिहास में ऐसे किसी युद्ध का प्रमाण नहीं मिलता।

कलियुग में भी कन्याओं का अपहरण यथापूर्व होता ही रहा है। महमूद गजनवी ने हजारों स्त्रियों को मथुरा से लूटकर गजनी के बाजारों में दो-दो रुपये में बेच दिया। जो देवियाँ राजस्थान में पूजी जा रही हैं, जैसे– आवणजी और उनकी सात बहनें, ये सभी मुसलमानों के भय से सिन्ध मुल्तान प्रदेश से भागकर राजस्थान और गुजरात आ गयीं। मुसलमानों के इन्हीं अत्याचारों से राजपूताना में लड़कियों को जन्म के समय ही मारने की कुप्रथा थी। उन्हीं के डर से स्त्रियों को पर्दे में रखा जाने लगा अन्यथा प्राचीन भारत में स्त्रियाँ पढ़ती-लिखती थीं, उनमें पर्दा-प्रथा नहीं थी। स्त्रियों की रक्षा में राजस्थान के वीरों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। किन्तु विगत हजार वर्षों से जो चारण बालायें देवी के रूप में मन्दिरों में स्थापित हैं, कहीं कोई सिंह पर चढ़ी हुई, दुष्टों को दण्ड देती हुई नहीं दिखाई पड़ी। आज भी स्त्रियों के प्रति अत्याचारों से समाचार-पत्र भरे पड़े हैं। हाँ, पुराणों और स्मृतियों की रचनाओं में देवीपूजन का उल्लेख मिलने लगा। दो हजार वर्ष पूर्व से भारत के हजारों छोटे-छोटे राजाओं के राज्य में बुद्धिजीवी व्यवस्थाकारों ने समाज चलाने के नियमों को धर्म कहकर; जिन महापुरुषों के नाम पर जनता की अटूट श्रद्धा थी, उनके नाम से स्मृतियों की रचना करके, जैसे– व्यास-स्मृति, नारद-स्मृति, मनु-स्मृति, याज्ञवल्क्य-स्मृति, देवल-स्मृति इत्यादि सैकड़ों स्मृतियों को समाज पर थोप दिया। इन स्मृतियों में है कि मनु इत्यादि ऋषियों ने वेदों से ढूँढ़-ढूँढ़कर समाज में चार वर्ण बनाये (जबकि मनु महाराजा थे, ऋषि नहीं थे)। ब्राह्मण न्याय करे, दान-दक्षिणा ले। क्षत्रिय सुरक्षा का कार्य देखे। वैश्य उद्योग और पशुपालन देखे। शूद्र सबकी सेवा

करे। कामों का यह बँटवारा भगवान ने स्वयं किया है, ऐसा गीता में है। गीता पढ़कर लोग वास्तविकता समझ सकते हैं तो प्रचार कर दिया कि गीता घर में मत रखना, नहीं तो लड़का साधु हो जायेगा, आगे वंश कैसे चलेगा? पितरों को पिण्डा-पानी कौन देगा? गीता महाभारत का एक अंश है। महाभारत सभ्यता के आरम्भ से शौर्य, पराक्रम और संस्कृति का ग्रन्थ है; दिग्विजय, त्रैलोक्य विजय की गाथा है, अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार है। यह समाजशास्त्र है। भारतीयों का आध्यात्मिक शोध कैसा है?–इसके लिए अलग से गीता-शास्त्र को इसमें संकलित किया गया जिससे कोई इस योगग्रन्थ में मिलावट न कर सके, भ्रान्ति उत्पन्न न कर सके, तो प्रचार किया गया कि महाभारत मत सुनना, नहीं तो घर में महाभारत-जैसा विप्लव, विनाश हो जायेगा। ब्राह्मण के अतिरिक्त कोई पढ़ नहीं सकता। इन व्यवस्थाओं के विरोध में कोई शस्त्र उठा सकता है तो नियम बना कि शस्त्र केवल क्षत्रिय चलायेगा। इस प्रकार शिक्षाविहीन, शास्त्रविहीन, शस्त्रविहीन, इतिहासविहीन, संस्कृतिविहीन गुमराह कबीला भारत! नयी-नयी व्याख्याओं से धर्मभीरु जनता आतंकित हो गयी। श्रद्धालु तो लोग होते ही हैं। धर्म के नाम पर, विधि-विधान के नाम पर देवी-देवता, भूत-भवानी, जो कुछ भी उन्हें पकड़ाया गया, वे उन्हीं की पूजा में उलझकर रह गये।

बचपन में हमें भी देवी-पूजा ही देखने को मिली थी। बहुत बड़ा मंदिर था। सांगिया देवी, चामुण्डा देवी, नागणचा देवी! राजस्थान में देवी छोड़कर और कोई है ही नहीं। अधिकांश देवियों ने चारण कुल में जन्म लिया। कोई देवी सातवीं-आठवीं शताब्दी में जन्मी, तो ३०० साल पहले जो जन्मी, वह भी देवी के रूप में पूजी जा रही है। जनश्रुति है कि इनमें से आवणजी सहित सात देवियों का जन्म जैसलमेर (माड प्रदेश) में मामड़ चारण के घर हुआ। (वैसे ये सातों कन्यायें हिंगलाज मंदिर में सेविकायें थीं जिन्हें सिन्ध-मुल्तान का सुल्तान अपनी पत्नी बनाना चाहता था। उसने इन्हें कारागार में डाला, जहाँ से बंदीगृह के रक्षक ने इन्हें निकालकर गुजरात

और राजस्थान पहुँचाया। मुसलमानों से इनकी रक्षा में उस रक्षक का एक पाँव जाता रहा।) लकड़ी के आसन (सहँगा) पर बैठने के कारण आवणजी को सांगिया जी कहते थे। इनके हाथ में सांग (भाला) है। करणी देवी का जन्म सुवाप (जोधपुर) में चारण मेहा के घर हुआ। उनके आशीर्वाद से जोधपुर और बीकानेर राज्य की स्थापना हुई। देसनोक में इनका प्रसिद्ध मंदिर है। जयपुर की जीण माता चहुँवाण राजपूत कुल में उत्पन्न हुई थीं। इस प्रकार राजपरिवार की देवी, लोकदेवी, कुलदेवी के अतिरिक्त परिवार में कोई महिला सती हो गयी तो वह भी देवी! पितर-पितराणी इत्यादि की पूजायें की जाती हैं। इस प्रकार राजस्थान की सभी कुलदेवियाँ आधुनिक काल की हैं, हमारी पूर्वज हैं। उनके प्रति श्रद्धा-निवेदन उचित है, किन्तु पूजा तो एक परमात्मा की ही होनी चाहिए और वह भी गीतोक्त विधि से।

वैष्णवी देवी

देवी महिमा के ग्रन्थों में प्रकृति अर्थात् माया को ही सर्वशक्तिमान परब्रह्म स्वरूपिणी मानकर उनके अतिरंजित पराक्रम का वर्णन किया है जबकि प्रकृति से ही हमें पार होना है। सभी देवियों को भगवती का रूप माना जाता है जिसमें तीन देवों की पत्नियाँ प्रमुख हैं। ब्रह्मा की पत्नी ब्रह्माणी जिन्हे सरस्वती भी कहते हैं, कोई उन्हें ब्रह्मा की पुत्री भी कहते हैं। शंकरजी की पत्नी पहले सती, बाद में पार्वती कहलायीं। विष्णु की पत्नी लक्ष्मी हैं। कोई देवता ऐसा नहीं है जो शादीशुदा न हो। ३३ करोड़ देवता न जाने कब से थे और उतनी ही उनकी पत्नियाँ। और ये देवता बढ़ते ही चले जा रहे हैं। जहाँ भी लाल रंग पोत दिया, एक देवता तैयार। आपके हवाई अड्डे के पास एक नककटी देवी है, मीरजापुर में एक गड़बड़ा देवी हैं – ये शास्त्रोक्त नाम तो हैं नहीं।

इसी तरह जम्मू-काश्मीर में एक वैष्णवी देवी पहाड़ पर हैं। उनके विषय में कहा जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश असुरों से त्रस्त होकर

चिन्तित थे। विधाता ने कहा कि इनको आशीर्वाद तो हमीं लोगों ने दिया है इसीलिए ये अजेय होकर उत्पात मचा रहे हैं। उनकी तीनों देवियाँ भी यह सुन रही थीं। उन्होंने आपस में विचार किया कि हमींलोग कुछ कर दें। उन तीनों ने अपना तेज इकट्ठा किया, एक पुतला तैयार हो गया; उसमें एक शक्ति आरोपित कर दिया तो वह हो गयीं देवी। तीनों देवियों ने अपना-अपना शस्त्र देकर कहा कि 'इन असुरों को मार डाल' तो सभी राक्षसों को उसने तुरन्त मार डाला। तदोपरान्त उस देवी ने कहा कि माताओं! अब मैं क्या करूँ? तो इन सभी देवियों ने कहा कि पृथ्वी पर तुम्हारी अभी और जरूरत है, तुम जन्म ले लो।

एक गरीब आदमी विष्णु का भक्त था। उसको विष्णु भगवान ने स्वप्न में दर्शन दिया कि तुम्हारे यहाँ एक कन्या जन्म लेगी जो बड़ी होनहार होगी, देवी तुल्य होगी तो वह बहुत खुश हुआ। लड़की हुई, थोड़ी सयानी हुई तो बोली कि मैं तपस्या करूँगी। इस पर पिता ने स्वप्न का विचार कर आदेश दिया कि ठीक है, तुम करो भजन। वह जंगल में बैठकर तपस्या करने लगी। राम लक्ष्मण उधर से सीता को ढूँढ़ते हुए निकले। वह बीच में मिल गयी तो वह बहुत खुश हुई कि राम तो मिल गये। राम से उसने पूछा कि आप लोग कहाँ जा रहे हो? आप किसे ढूँढ़ रहे हो? आप उदास क्यों हो? तो राम ने कहा कि मेरी भार्या सीता खो गयी है, मैं उसे ढूँढ़ रहा हूँ। तो वह बड़ी दुःखी हुई कि इनका तो विवाह हो चुका है। राम उसकी भावना को समझ गये और देवी से कहा कि तुम चिन्ता मत करो। मैं सीता को ढूँढ़कर ले आता हूँ; फिर तुम्हारे पास आऊँगा। यदि तुम मुझे पहचान लोगी तो तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो जायेगी, अन्यथा नहीं। वह प्रतीक्षा करने लगी। बाद में राम एक विचित्र सा वेश बनाकर आये, बोले– मैं आ गया। इस पर देवी बिगड़ खड़ी हुई कि हमने तुमको कब बुलाया था। राम ने कहा– ठीक है, नहीं बुलाया तो मैं जाता हूँ। जब वह जाने लगे तब देवी को याद आया कि भगवान ने कहा था कि मैं आऊँगा, कहीं यह वही तो

नहीं हैं। तब वह बोली– ठहरो! तुम कहीं राम तो नहीं हो। तब राम अपने वेश में आ गये और कहा कि तुम मुझे नहीं पहचान पायी इसलिए अभी हमारे मिलन का समय नहीं है। कलियुग के प्रथम चरण में मैं तुम्हें मिलूँगा। तब तक तुम हिमालय की पहाड़ियों के नीचे तलहटी में बैठकर भजन करो, तब तक तुम्हारी महिमा काफी बढ़ जायेगी।

जब सब निशाचरों का वध उस देवी ने कर ही दिया था तो ये सुमाली, रावण इत्यादि जो पैदा हुए और रावण ने एक लाख वर्ष तक आतंक मचा रखा था तो तीन देवियों के पराक्रम से उत्पन्न देवी ने किसको मार डाला जबकि ये राक्षस ज्यों के त्यों बने हुए थे? फिर कई लाख वर्ष तो त्रेता के बीत गये, द्वापर लाखों वर्ष का, वह भी बीत गया, कलियुग आया तो वह भी कुछ वर्ष बीता जबकि देवी अभी प्रतीक्षा ही कर रही हैं।

नाथ सम्प्रदाय के एक महात्मा उसी पहाड़ी पर रहते थे। उन्होंने अपने शिष्य से कहा कि देखो, देवी की ओर बड़ी भीड़ जा रही है, उसका यश चारो तरफ फैल रहा है। भैरवनाथ, जरा पता करो। भैरवनाथ एक नवयुवक था। उसने देवी का पीछा कर लिया। इस पर देवी एक गुफा में चली गयीं, फिर गुफा में से त्रिशूल फेंककर आगे गायब हो गयीं। बहुत पीछा किया तो देवी भैरवनाथ को मारने को उद्यत हुईं। इस पर भैरवनाथ ने कहा कि हमारी छोटी सी भूल है। यदि हमारा मन विचलित हो गया तो क्या आप हमें मृत्युदण्ड देंगी? हमें क्षमा करें। देवी प्रसन्न हो गयीं, जीवनदान दे दिया। तो देवी की भी पूजा हो रही है, भैरव की भी पूजा हो रही है। इस प्रकार त्रेता युग से आज तक देवी की पूजा इसी तरह से हो रही है लेकिन देवी का भगवान से मिलन की घड़ी अभी तक नहीं आयी।

विचारणीय है कि देवी के जितने भी मन्दिर बने हैं, ८००-९०० वर्ष के अन्दर बने हैं। राजस्थान में अधिकांश चारणों की लड़कियाँ हैं। चारण अर्थात् राजाओं का गुणगान करनेवाले! कुछ राजपूतों की लड़कियाँ हैं। इन्होंने जीते-जी तो सात्त्विक आहार लिया, व्रत से रहीं, टेक से रहीं!

और मरने के बाद इन देवियों के मन्दिर पर बकरा चढ़ता है, भेड़ा चढ़ता है, भैंसा चढ़ता है। नवरात्र में एक सौ आठ भैसों की बलि चढ़ती है। क्या देवी अब भैंसा खाने लगीं? मुसलमानों के आक्रमण के समय राजपूत लोग तलवार लेकर इन देवियों की रक्षा के लिए लड़ते रहे। जब वे जीवित थीं तब तो ये तलवार लेकर नहीं दौड़ी; और शरीर छूटने के बाद चार भुजा, आठ भुजा, हजार भुजायुक्त हो गयीं? जीते जी जिनका इतना संयम था, परहेज था और शरीर छूटने पर बताया कि इतना भेड़ा, इतना भैंसा... शराब...। यह क्या है? यह एक व्यवस्था मात्र है, धर्म नहीं।

राजपूत समाज प्राय: बहुत भावुक और भक्त रहा है। पुजारीजी ने जो भी कह दिया कि धर्म यह है तो उसको मान लिया। उसको नहीं माना बल्कि उस वेश को मान दिया। यदि कोई राजपूत तर्क भी करता है तो मातायें मना कर देती हैं। माता की आज्ञा मर्यादित राजपूत कैसे टाले। जीवनभर इन कन्याओं ने क्या व्रत किया, क्या साधना किया, क्या उपदेश दिया, उसकी पुस्तिका होनी चाहिए ताकि उन उपदेशों का पालन आनेवाली पीढ़ियाँ करें। सभी उनसे आशीर्वाद लें, खान-पान सन्तुलित रखें। जीते-जी तो ऊँट पर चलती रहीं, मरने के बाद शेर की सवारी? ये क्या है? ये तो अतिशयोक्ति और अतिरंजित कथायें हैं। समाज के सामने सत्य आना चाहिए। बीच में जो ये भगवान को भुला देनेवाली कथायें आ गयी हैं, इन पर लोगों को विचार करना चाहिए।

जहाँ तक देवी मंदिरों में मांस-मदिरा का प्रयोग है, प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में राजा–महाराजाओं द्वारा अर्पित भोगराग को अस्वीकार करने या समाज के खान-पान को नियन्त्रित करने का साहस उन चारण-कन्याओं या पुजारियों में नहीं रहा होगा। वे तो भक्तों को आशीर्वाद देना ही जानते थे। देश-काल-परिस्थितिवश खान-पान, पहनावा और निवास का निर्धारण होता रहा है। लोग जीवनयापन करें किन्तु खाद्य सामग्रियों को देवीपूजन के विधान के रूप में न लें।

सृष्टि में जितने तत्त्वदर्शी पुरुष हुए, मातायें भी उनसे कम तत्त्वदर्शी नहीं हुईं। सृष्टि के आरम्भ में माता मदालसा बहुत बड़ी तपोधन थीं। सावित्री जिन्होंने अपने सत्यव्रत के बल पर, पातिव्रत धर्म के बल पर यमराज से अपने पति सत्यवान को छुड़ा लिया था। इसी तरह से माता अनुसुइया, जिनके पति अत्रि महाराज सप्तर्षियों में से एक थे। जब अत्रि की तपस्या पराकाष्ठा पर पहुँची तो उसी समय अकाल पड़ गया। अत्रि महाराज ने जल लाने के लिए कहा तो माता अनुसुइया ने अपने तपोबल से जलधार प्रकट कर दिया। उस समय गंगा, यमुना और सरस्वती अपने तीर्थों का पाप धोने के लिए देवलोक में सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती के यहाँ गयी थीं। नारद ने कहा, इतनी दूर तक आपको यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी। मर्त्यलोक में अनुसुइया जी हैं। उनका दर्शन कर लें और आपका पाप धुल जायेगा। तीनों महादेवियों को ईर्ष्या हुई कि हम तो इनका पाप धोयेंगे तब धुलेगा; और अनुसुइया के दर्शन मात्र से इनका पाप धुल जायेगा? उन्होंने कहा कि तब जाओ, अनुसुइया से ही पाप धुलवा लो। इस पर वे यहाँ आयीं और उनका पाप धुल गया। इस उपलक्ष्य में गंगा ने एक धारा वहाँ बहा दी जिसका नाम है मंदाकिनी। लेकिन इससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश की देवियाँ उद्विग्न हो उठीं। उन्होंने माता अनुसुइया को सत्य से, उनके पातिव्रत धर्म से हटाने के लिए नागराज को भेजा कि जाकर अनुसुइया के पति को डँस लो। नागराज ने देखा, अत्रि महाराज के स्थान पर वहाँ भगवान शंकर स्वयं बैठे हुए हैं, वह लौट गये। आगे भी इन देवियों ने कड़ी परीक्षायें लीं। अन्ततः माता अनुसुइया के प्रति अपने आपको समर्पित कर दिया। इन्हीं माता अनुसुइया के ही शिष्यों में नर्मदा भी थीं।

माताओं की महिमा कम नहीं रही है। मातायें भी उतनी ही संत हैं, उन्होंने भी अच्छी साधना की लेकिन उनका सही विवरण नहीं दिया गया। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि अर्जुन! परमात्मा के अंश मात्र से अनन्त सृष्टि का पालन, सृजन और परिवर्तन होता ही रहता है, उन एक परमात्मा

का ही पूजन करना चाहिए। इन माताओं ने वहीं व्रत-साधना किया था जो सन्त महापुरुष सदैव से करते चले आये हैं, अनादि काल से जो करते चले आ रहे हैं, अलग से उन्होंने कोई व्रत नहीं किया, और न कोई है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि–

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

अर्जुन! जो शास्त्रविधि को छोड़कर अन्य-अन्य विधियों से मनमाना आचरण करता है, उसके लिए न सुख है, न शान्ति है। वह उन सबसे भ्रष्ट हो जाता है। अतः '**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते...**' तुम्हारे कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था में यह गीताशास्त्र ही प्रमाण है। इसका अध्ययन करके आचरण करें तो आप अविनाशी पद को प्राप्त कर लेंगे, सदा रहनेवाली शान्ति और धाम प्राप्त कर लेंगे।

कतिपय आख्यानों में है कि दच्छ के यज्ञ में सती के जले हुए शरीर को लेकर भगवान शंकर भ्रमण करने लगे तो विष्णु ने शव के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। जिन ५२ स्थानों पर वे अंश गिरे, वहाँ-वहाँ शक्तिपीठों की स्थापना हुई जहाँ आज भी देवी-पूजन होता है, जैसे– हिंगलाज, कलकत्ता में काली, कामरूप में कामाख्या, मदुरा में मीनाक्षी, मुम्बई में मुम्बा देवी इत्यादि; किन्तु 'नाना पुरान निगमागमसम्मत' रामचरितमानस में गोस्वामीजी ने ऐसी किसी घटना का उल्लेख नहीं किया है। उनका वर्णन इस प्रकार है–

जब तें सती जाइ तनु त्यागा। तब तें सिव मन भयउ बिरागा।।
जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा।।

सती ने जब से शरीर का त्याग किया, शंकर जी के मन में वैराग्य जागृत हो गया। '**जपहिं सदा रघुनायक नामा**'– वे सदैव प्रभु राम के नाम का जप करने लगे; '**जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा**'– वे यत्र-तत्र राम के गुणगान का श्रवण करने लगे।

चिदानन्द सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक अभिराम।।

वे मोह, मद, काम से रहित होकर '**बिचरहिं महि**'– पृथ्वी पर विचरण कर रहे थे। '**कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना।**'– कहीं वे मुनियों को ज्ञान का उपदेश करते थे, '**कतहुँ राम गुन करहिं बखाना।**'– कहीं वे राम के गुणों का वर्णन करते थे। काकभुशुण्डि से रामकथा श्रवण करने के प्रसंग में शंकर जी ने स्वयं पार्वती को बताया–

प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा।।

पहले दक्ष के घर में तुम्हारा जन्म हुआ था, उस समय तुम्हारा नाम सती था।

दच्छ जग्य तव भा अपमाना। तुम अति क्रोध तजे तब प्राना।।

दक्ष के यज्ञ में तुम्हारा अपमान हुआ था, क्रोध में आकर तुमने अपना प्राण त्याग दिया था।

तब अति सोच भयउ मन मोरें। दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरें।।

तुम्हारे निधन से मेरे मन में अपार शोक हुआ। तुम्हारे वियोग में मैं बहुत दुःखी हो गया।

सुन्दर बन गिरि सरित तड़ागा। कौतुक देखत फिरउँ बेरागा।।

उस समय वन, पर्वत, सरिता और सुरम्य सरोवरों के दृश्यों को विरक्त भाव से देखते हुए वह विचरण करते रहे। इसी क्रम में सुमेरु पर्वत से उत्तर नील पर्वत पर एक सुन्दर सरोवर में हंस का शरीर धारण कर अन्य निर्मल-बुद्धि हंसों के साथ उन्होंने रामकथा का श्रवण किया। शव लेकर घूमने की बात कहीं नहीं हैं।

जो सती भोलेनाथ की सेवा में स्वयं असफल रहीं, उनके मृत शरीर के अंगों की उपासना से कल्याण की कामना करनेवालों को क्या

कहा जाय! शरीर की पूजा, वह भी मृत-शरीर के अंग-उपांगों की पूजा, शव के शरीर पर बैठकर पूजा, वीभत्स उपकरणों द्वारा पूजा भारतीय परम्परा नहीं है। गीता में उल्लिखित दैवी सम्पद् के लक्षणों का आचरण ही भारतीय मनीषियों द्वारा प्रशंसित रहा है।

वस्तुत: शिव द्वारा सती के शव को ढोना एक आध्यात्मिक रूपक है। प्रत्येक साधक के समक्ष यह स्थिति आती है। साधक जब भजन में बैठता है, जिन-जिनमें उसका लगाव होता है, उनकी स्मृतियाँ वर्षों उसका पीछा करती रहती हैं, उसके मन-मस्तिष्क में भरी रहती हैं, जिनका भार वह अपने कंधों पर ढोता रहता है। एक परमात्मा में समर्पण के साथ जब साधक नाम-जप में, गुरु महाराज के ध्यान में या उनकी ब्रह्मविद्या के चिन्तन में लगता है तो भगवान क्रमश: उन स्मृतियों को हटाते जाते हैं और चिन्तन में सुरत को स्थिर करते जाते हैं, योग-साधन पढ़ाते जाते हैं। धीरे-धीरे पूर्व की स्मृतियाँ हट जाती हैं, भगवान में भली प्रकार मन लग जाता है। वे स्मृतियाँ भगवान की कृपा से ही हटती हैं, अपने बल से कभी नहीं– '**मन बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजे।**'

यही आशय है कि विष्णु भगवान ने शनै:-शनै: उस नश्वर शव को काट दिया, न कि शंकरजी कोई लाश ढोते रहे। लाश तो वैसे भी दो-चार दिनों में सड़ जाती है, गल जाती है, और दस-बीस दिनों में टुकड़े-टुकड़े हो गिर जाती है; इसमें भगवान को काटने की आवश्यकता ही क्या है? जब जोड़ों की चर्बी हटी तो हड्डी स्वत: गिरने लगेगी।

वस्तुत: सती की मृत्यु से शंकर जी को गहरा आघात लगा था। भजन में मन नहीं लग रहा था। सती की स्मृति पीछा कर रही थी। निराधार विचरण से उनमें वैराग्य दृढ़ हो गया, भगवान में लौ लग गयी, सती का मोह समाप्त हो गया, वे समाधिस्थ हो गये। यह प्रत्येक साधक के समक्ष आता है।

पुराण साहित्य और देवी

मधु – कैटभ

पुराण साहित्य में मारकण्डेय पुराण में कथा आती है कि सूर्य के पुत्र सावर्णि, जो आठवें मनु कहे जाते हैं, भगवती महामाया के अनुग्रह से मन्वन्तर के स्वामी हुए। बस यहीं से देवी-माहात्म्य आरम्भ होता है। महाराजा मनु, जिनसे सृष्टि उत्पन्न हुई है, उनकी आठवीं पीढ़ी में सावर्णि हुए। उनके समय से देवी-पुराणों की चर्चा शुरु होती है।

इस पुराण में है कि कल्प के अन्त में जब सम्पूर्ण जगत् एकार्णव में निमग्न हो रहा था, भगवान विष्णु शेषनाग की शय्या पर योगनिद्रा का आश्रय ले सो रहे थे, उनके कानों की मैल से दो भयंकर असुर मधु और कैटभ उत्पन्न हुए। पैदा होते ही उन्होंने चारों ओर देखा तो जल में कमल पर ब्रह्मा बैठे दिखाई पड़े। असुरों ने ब्रह्मा को ललकारा। ब्रह्मा जी थोड़ी देर लड़े, लेकिन देखा कि इन्हें जीत नहीं पाऊँगा, देवताओं को बुलाया। वे भी भाग खड़े हुए। तब उन्होंने विष्णु भगवान को जगाना चाहा किन्तु वे जग ही नहीं रहे थे क्योंकि उनके पलकों में योगनिद्रा देवी विराजमान थीं। ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर योगनिद्रा देवी एक ओर हो गयीं, भगवान जग गये। राक्षस उनसे लड़ने लगे। पाँच हजार वर्षों तक विष्णु युद्ध करते रहे। असुर बहुत प्रसन्न हुए और बोले– तुम थके नहीं, बराबर लड़ते रह गये अत: हमसे कोई वरदान माँग लो। विष्णु ने कहा– दोगे? उन्होंने कहा– हम वचन के पक्के हैं, अवश्य देंगे! विष्णु ने कहा– बताओ, तुमलोग मरोगे कैसे? असुरों ने कहा– हमारे जाल में हमीं को फँसा दिया! ठीक है, चारो ओर जल है तो हम सूखे स्थल पर मरना चाहेंगे। यहाँ शारीरिक बल से बुद्धि-बल की श्रेष्ठता दिखायी गयी है। उसी का प्रयोग कर भगवान सफल रहे। उन्होंने असुरों की गर्दन पकड़ा, अपनी जाँघ पर पटका और सुदर्शन चक्र से दोनों का गला काट दिया। असुर मारे गये। ब्रह्माजी ने योगनिद्रा देवी की स्तुति की।

वस्तुत: योगनिद्रा कोई देवी नहीं है, यौगिक शब्द है। योगाभ्यास में शरीर जागता रहता है, मनोवृत्ति शयन करती है। शरीर भली प्रकार सचेत रहे, लेकिन मन में न भला, न बुरा उद्वेग उठे। जिस प्रभु का चिन्तन करते हैं, उनका स्वरूप मात्र सामने रहे – **'तदैवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।'** *(योगदर्शन, ३/३)*– लक्ष्यमात्र का आभास रहे, चित्त का स्वरूप शून्य रहे, इसका नाम समाधि है। **'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।'** *(योगदर्शन, ३/२)* इस प्रकार योगनिद्रा में संसार से वृत्ति सिमटकर सो गयी और परमात्मा के स्वरूप में भली प्रकार जग रही है। ब्रह्मविद्या से संयुक्त बुद्धि ही ब्रह्मा है। वह बुद्धि प्रार्थना में लगी रहती है कि योग-साधना शीघ्र पूर्ण हो। स्तुति तो भगवान की ही है, किसी देवी की नहीं। जहाँ योगाभ्यास पूर्ण हुआ तो परमात्मा की पालन करनेवाली प्रशक्ति भली प्रकार जागृत हो जाती है, योगनिद्रा हट जाती है और विष्णु अर्थात् परमात्मा की वह शक्ति जो कण-कण में व्याप्त है, असुरों का संहार कर डालती है।

प्रकृति में दो भयंकर असुर हैं। यह सृष्टि स्वर्णिम है। प्रकृति में जो माधुर्य दिखाई दे रहा है, यही मधु है; और कैटभ है उसके प्रति कर्त्तव्य करने की विवशता। पहले तो यह समझ में ही नहीं आता। भजन करते-करते एक अवस्था आती है कि यह मल निकलकर बाहर आ जाता है, प्रकृति का मैल स्पष्ट हो जाता है। रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श– इन पाँचों तन्मात्राओं में आसक्ति ही मधु-कैटभ दैत्यों से पाँच हजार वर्षों तक चलनेवाला युद्ध है। आँखें रूप देखती हैं, कान शब्द सुनते हैं, जिह्वा रस चाहती है। जब तक इनमें माधुर्य है, तब तक योग-साधना चलेगी, भगवान रक्षा करेंगे। जहाँ रसास्वादन समाप्त हुआ, प्रकृति समाप्त! प्रकृति का माधुर्य समाप्त! नीचे विषयरूपी वारि है, ऊपर ब्रह्मपीयूष है। जब तक रंचमात्र भी विषयरूपी वारि है, तब तक यह संघर्ष चलेगा, साधना चलेगी, भगवान रक्षा करेंगे। इसी प्रकार जब तक प्राप्त करने योग्य ब्रह्मपीयूष अप्राप्त है तब तक यह संघर्ष चलेगा, साधना अपूर्ण है। जब विषयवारि

समाप्त और ब्रह्मपीयूष भी अलग नहीं रह गया, प्राप्त हो गया तो जलाशय समाप्त। उस स्तर पर केवल भगवान की प्रत्यक्ष जानकारी ही जंघा है। योगयुक्ति प्रत्यक्ष हो गयी, उस स्तर पर साधना-चक्र पहुँचा तो प्रकृति का माधुर्य सदा के लिए समाप्त हो जाता है और न उसके प्रति कर्त्तव्य रह जाता है; मधु और कैटभ सदा के लिए मारे जाते हैं। आसुरी सम्पद् सदा के लिए शान्त हो जाती है, पुरुष अपने सहज स्वरूप में स्थित हो जाता है। बुद्धि बच गयी, ब्रह्मा बच गये। ये मधु और कैटभ अलग से कोई राक्षस जन्मे ही नहीं। दैवी सम्पद् जो परम देव परमात्मा में प्रवेश दिलाती है, प्रकृति की आसुरी वृत्ति को काटती है, उसी का चित्रण है। किन्तु लोगों ने न समझकर उन असुरों और देवियों के मन्दिर बना डाले। मधु और कैटभ बाहर कोई राक्षस हुए ही नहीं।

महिषासुर

एक बार देवताओं और असुरों में पूरे सौ वर्ष तक युद्ध होता रहा। असुरराज महिषासुर अपनी अपार सेना लेकर लड़ा और देवताओं को परास्त कर इन्द्र बन बैठा। देवता रोते-बिखलते ब्रह्मा, विष्णु और महेश के पास गये। तीनों बड़े क्रोधित हुए। सब देवताओं को संगठित किया। सबने अपना-अपना तेजपुञ्ज एकत्र किया जो शक्ति (देवी) के रूप में प्रकट हुआ।

सभी देवताओं ने अपने-अपने अस्त्र दिये। शंकर के त्रिशूल से त्रिशूल निकला, विष्णु के चक्र से चक्र! इन्द्र ने वज्र, यमराज ने दण्ड, समुद्र ने कभी जीर्ण न होने वाले दो वस्त्र देवी को दिये। इस देवी (शक्ति) ने महिषासुर और उसकी सेना से युद्ध किया, जिसमें महिषासुर मारा गया। इस कथानक से स्पष्ट है कि सभी देवता जब तक अलग-अलग लड़ रहे थे, जब तक उनमें फूट थी, वे हार रहे थे, भाग रहे थे। जहाँ फूट समाप्त हुई, उनमें एकता आ गयी तो जीत गये। पहले सभी अस्त्र-शस्त्र अलग-अलग चल रहे थे। त्रिशूल अलग चलता था, वज्र अलग चलता था, चक्र

अलग चलता था। जब वे एक साथ एक लक्ष्य को लेकर चलने लगे तो विजय हो गयी। इस प्रकार दुर्गा अलग से कोई देवी नहीं, सामूहिक देव-शक्ति का नाम ही देवी है।

विचारणीय है कि यह देवी ब्रह्मा की ब्रह्माणी, विष्णु की लक्ष्मी, शंकर की पार्वती तथा तैंतीस करोड़ देवताओं के पत्नियों की सामूहिक रचना थी, अकेले पार्वती का अंश नहीं थी। किन्तु उन दुर्गा को अकेले शंकरजी की पत्नी मान लिया जाता है। देवी के अधिकांश मन्दिर सिंहवाहिनी दुर्गा के हैं जबकि उनके सभी नाम देवी पार्वती के हैं। भोलेनाथ के साथ पार्वती की सवारी के लिए बूढ़ा नन्दी बैल था। हजार सिंहों से जुते रथ पर वह भगवान शंकर के साथ तो कभी नहीं बैठीं। यह भी उल्लेखनीय है कि महिषासुर की लड़ाई देवताओं से थी, मनुष्यों से नहीं। वह तो देवलोक का झगड़ा था, समस्या देवलोक की थी। आपके यहाँ तो ऐसा कोई काण्ड नहीं हुआ, आप उसके लिये क्यों परेशान हैं? दुर्गापूजा के नाम पर पृथ्वीवासी उन्हें क्यों पूजते हैं?

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि एक परमात्मा के सिवाय किसी का अस्तित्व नहीं है। भजन एक परमात्मा का ही करना चाहिये। वह परमात्मा ज्योतिर्मय है, काल से अतीत है, जिसे न शस्त्र काट सकता है, न अग्नि जला सकती है, न वायु सुखा सकती है, न आकाश अपने में विलीन कर सकता है; प्रकृति से उत्पन्न कोई भी पदार्थ उसका स्पर्श ही नहीं कर सकता। वह परमात्मा शाश्वत है, सनातन है, सर्वत्र से देखता है, सुनता है। आप संकल्प बाद में करते हैं, वह पहले से जानता है। उन प्रभु का निवास आपके हृदय-देश में है। वह सबके अन्तराल में जीवनी-शक्ति के रूप में प्रवाहमान हैं। इसलिए भजन एक परमात्मा का ही करना चाहिए।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्तं आसुरं पार्थ मे शृणु।। *(गीता, १६/६)*

गीता के अनुसार मनुष्य दो प्रकार का होता है– एक असुरों-जैसा और दूसरा देवताओं-जैसा। जिसके हृदय में दैवी सम्पद् प्रवाहित है वह देवताओं जैसा है, और आसुरी सम्पद् कार्य करती है तो वह असुर है। वास्तव में प्राणियों के स्वभाव दो प्रकार के हैं– देवताओं-जैसा, असुरों-जैसा। आपका एक भाई असुर और दूसरा देवता हो सकता है। दैवी सम्पद् परम कल्याण के लिए है। परमात्मा का देवत्व अर्जित करते-करते चित्त की निरोधावस्था में परम तत्त्व परमात्मा का दर्शन, स्पर्श और उसमें स्थिति प्राप्त हो जाती है।

जब तक (देवता) दैवी सम्पद् बिखरी है, तब तक शरीर में महिषासुर कार्यरत रहता है। 'मही' का अर्थ है पृथ्वी। आसुरी सम्पद् को प्राप्त पुरुष कहता है कि भगवान नाम की कोई वस्तु नहीं है; इस संसार में जो कुछ है, स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न है; मैं ही ईश्वर और ऐश्वर्य का भोक्ता हूँ; मेरे पास इतना धन है, इतना और होगा; यह शत्रु मारा गया, वह मारा जायेगा; मैं बड़ा कुटुम्बवाला, धनवाला और पृथ्वी का स्वामी हूँ – अन्त:करण की यह वृत्ति ही महिषासुर है। यह आसुरी वृत्ति है। जब तक यह वृत्ति है, तब तक उसके साथ सहस्रों, अनन्त वृत्तियाँ हैं। यही रक्तबीज है। **'करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। रक्तबीज जिमि बाढ़त जाहीं।।'** पाप एक ओर से समाप्त करें तो दूसरी ओर से पुन: जीवित हो उठता है। यही रक्तबीज का रहस्य है। भगवान की कृपा और उनके प्रति समर्पण से ही ये आसुरी वृत्तियाँ जा सकती हैं, अन्य कोई उपाय नहीं है।

देवता आंशिक रूप से सबके हृदय में हैं। असुरों से व्यथित होकर वे ब्रह्मा-विष्णु-महेश के पास गये। उन्होंने सबको संगठित किया। दैवी सम्पद् एक इकाई बन गयी। आपके हृदय की सामूहिक दैवी सम्पद् ही देवी है। वह बलवती हो गयी तो आसुरी सम्पद् शान्त हो गयी। पूर्णतया विकसित हो गयी तो आसुरी सम्पद् पूर्णत: शान्त हो जाती है, महिषासुर मारा जाता है।

भजन का आरम्भ ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश से है। यह सृष्टि अनादि है, अन्तहीन चली आ रही है। अलग से किसी देवी-देवता की रचना की आवश्यकता नहीं है। रचना होती है आपके हृदय में। किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष की शरण-सान्निध्य से, उनकी टूटी-फूटी सेवा करने से, उनके निर्देशन में साधना करने से आपके हृदय में जो प्रभु प्रसुप्त हैं, वह जागृत हो जाते हैं, भगवान उठाने-बैठाने-बताने लगते हैं। जागृति की इस विधि का नाम है ब्रह्मा।

अभ्यास थोड़ा उन्नत हुआ, पहले तो भगवान कहते भर थे, क्रमश: पालन करने लगते हैं। पालन करनेवाली यही शक्ति है विष्णु। विश्व अणु से विष्णु! अणुरूप में सर्वत्र व्याप्त परमात्मा, जिस अणु पर आप खड़े हैं, वहीं से योगक्षेम करने लगते हैं। अर्जुन इसी स्तर पर थे। भगवान ने कहा– अर्जुन! कर्ता-धर्ता तो मैं हूँ, तू निमित्त मात्र हो जा। उन्हीं के संरक्षण में चलते हुए अर्जुन जब मूल तक पहुँच गया तब उन्हीं परमात्मा की संहार करनेवाली शक्ति का नाम शिव है। वह शिव आपका संहार नहीं करते बल्कि आपके जन्म-मृत्यु का जो कारण हैं, उन संस्कारों का संहार कर देते हैं। दु:खों का कारण है जन्मान्तरों के पड़े हुए संस्कार! एक संस्कार शेष है तो एक जन्म और लेना पड़ेगा। अन्तिम संस्कार मिट गया तो अब जन्म कौन दे? जब संस्कार हैं ही नहीं तो हृदय हो गया श्मशान। उस समय जो अवशेष बचता है, वह है शिवतत्त्व, कल्याण तत्त्व, ज्योतिर्मय तत्त्व, प्रकृति की सीमाओं से अतीत असीम तत्त्व! ईश्वर की सारी विभूतियाँ उसमें विद्यमान रहती हैं। अजर, अमर, शाश्वत इत्यादि भगवान की जो कुछ भगवत्ता है, वह सब प्रसारित हो जाता है– **'सुकृति सम्भु तनु बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।।'** भगवान शिव में जो विभूति है, वह गुरु महाराज के चरणों की देन है, क्योंकि जागृति गुरु महाराज से ही हुई है। यही इस कथानक में भी है। देवता मिलकर गये तो विधि जागृत हुई, पालन हुआ, सारी दैवी सम्पद् एकत्र हुई तो महिषासुर का संहार हो गया।

कहीं-कहीं वर्णन है कि महिषासुर की मृत्यु के पश्चात् उसकी बहन महिषी ने भी देवलोक को आतंकित किया। प्राप्ति के साथ कुछ दिनों तक प्राप्ति का नशा रहता है कि मैं ब्रह्म हूँ, मैं आत्मा हूँ – यही महिषी है। इसके लिए है कि हरिहरपुत्र ही उसे समाप्त कर सकता है। हरि अर्थात् शुभाशुभ का हरण करनेवाली शक्ति और हर अर्थात् कल्याणस्वरूप शिव! शुभाशुभ संस्कारों की समाप्ति के पश्चात् नारायणस्वरूप शिवस्वरूप के जागृत होते ही कौन कहे कि 'मैं ब्रह्म हूँ'। जब कोई अलग हो तब तो!

तहाँ न ईश्वर जीव न माया, पूजक पूज्य न चेरा।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, नहिं तहँ द्वैत बखेड़ा।।

'मैं पूर्ण हूँ'– यह वृत्ति भी समाप्त हो जाती है– **'कोई अपने में देखा, साईं संत अतीत।'।**

इस प्रकार महिषासुर का कथानक भी यौगिक रूपक है, न कि महिषासुर नाम का कोई राक्षस था जिसे किसी स्त्री ने मार डाला। सृष्टि के आदि से औरतें रक्षणीय रही हैं। उनकी सुरक्षा का भार सदैव पुरुषों पर रहा है। कन्याओं की रक्षा का भार पिता पर, बहनों की रक्षा का दायित्व भाइयों पर, माताओं की रक्षा एवं सेवा का भार पुत्रों पर! इस प्रकार उनकी रक्षा का भार स्वजनों के सिर सदैव रहा है। महिलाओं में वीरांगनायें भी रही हैं। अपने तथा देश की रक्षा के लिए उन्होंने प्राणोत्सर्ग भी किया है, किन्तु परमात्मा के स्थान पर उनकी पूजा हुई हो, ऐसा कोई उदाहरण नहीं है।

देवी की जहाँ-जहाँ स्तुति की गयी है, अधिकांश माता पार्वती की हैं; अन्त में दुर्गा का नाम दे दिया गया है। उनका भोजन भैंसा, भेड़ा, बकरा बताया गया है। जबकि हिमाचल नरेश की कन्या के रूप में उन्होंने जन्म लिया, होश सम्हालते ही तपस्या में चली गयीं, उनकी तपस्या में शाकाहारी जीवन का उल्लेख मिलता है–

कछु दिन भोजन बारि बतासा। किये कठिन कछु दिन उपबासा।।

बेल पाति महि परइ सुखाई। तीन सहस संबत सोइ खाई।।

जब वह भगवान शंकर के यहाँ कैलाश पर्वत पर आयीं तो कन्द, मूल, फल, भाँग और ठण्डाई! न मांस खाने को मिला, न भेड़ा-भैंसा मिला। न पिता के घर मांस खाने को मिला, न मदिरा पीने को मिली, न पति के घर ये सब मिलें, जबकि शक्ति के रूप में सभी मूर्तियाँ पार्वती की हैं और सब जगह भेड़ा खाओ, भैंसा खाओ, बकरा खाओ! यह सब शिक्षा और शास्त्र के अभाव में फैली हुई कुरीति है।

जोधपुर से ६५ किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में ओसियाँ में चामुण्डा माता का मन्दिर है जहाँ देवी को १०८ भैंसों और बकरों की बलि दी जाती थी। कालान्तर में वहाँ के शासक और प्रजा ने जैन-धर्म स्वीकार कर लिया। जैन-भक्तों ने गुरु से पूछा कि अब देवी की पूजा कैसे करें? गुरु ने कहा कि अहिंसा हमारा मुख्य सिद्धान्त है, उसे तो हम छोड़ नहीं सकते। देवी को मीठा भोग अर्पित करें। इससे देवी नाराज हो गयीं। गुरु से कहा कि मैंने तेरा धर्म चलाया और तूने मेरा परम्परागत चढ़ावा बन्द करवा दिया। गुरु ने निवेदन किया कि आपको क्या चाहिये? चामुण्डा ने कहा– करड़-मरड़ चाहिये। गुरु ने देवी से इसका वचन लेकर श्रावकों से कहा– आपलोग देवी को सूखा नारियल करड़ और खाजा (मिठाई) मरड़ अर्पित करो। देवी ने आचार्य से कहा कि मैंने तुमसे करड़-मरड़ माँगा था, तुमने कुछ और ही चढ़वाया। तब आचार्य ने दृष्टान्त देकर देवी को प्रतिबोधित किया जिससे देवी के ज्ञान-चक्षु खुल गये। उन्होंने हिंसा का परित्याग कर दिया, रौद्ररूपधारिणी चामुण्डा अपने वात्सल्यरूप में सच्चियाय माता के नाम से प्रसिद्ध हुईं। जहाँ जैसे भक्त और पुजारी रहे, वहाँ उसी प्रकार का नैवेद्य चढ़ता रहा।

जसोल राज्य की रानी भटियाणीजी माँ जी सा, मालाणी की राणी सा, वाकल माता इत्यादि राजपूतों की पूर्वज रही हैं। गणगौर (घणगौर) के रूप में माँ पार्वती और ईश्वर (शंकर) की पूजा कहीं होली के बाद तो कहीं

श्रावणी तीज के अवसर पर भारत भर में होती है (जब भगवान शंकर और पार्वती की पूजा, रामनवमी और विजयादशमी का उत्सव पहले से ही निर्धारित है तो उसी अवसर पर उन्हीं तिथियों में देवी-पूजन (और गणपति-पूजन) के नाम पर नयी-नयी पूजाओं को शुरु कराना और इन्हें न करो तो पाप – महाभागवत (देवी पुराण) का ऐसा कहना विकृत मनोदशा का परिचायक है, भगवान के महान पराक्रम को धूमिल करने का प्रयास है, सत्य को मिटाने का प्रयास है)। भगवान महावीर और गौतम बुद्ध की पूजा होती है। आप अपने इन पूर्वजों को नमन करें, इनसे प्रेरणा लें, जो कुछ खाते-पीते-चढ़ाते आ रहे हैं, सबकुछ करें; लेकिन भजन उस एक परमात्मा का ही करें जिसकी आराधना हम सबके पूर्वजों ने की है। आप देवी-देवताओं के मन्दिर में, श्रद्धास्थलों में, पूजाघर, पगोड़ा, आश्रम, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारा इत्यादि में अपनी-अपनी श्रद्धानुसार जहाँ भी जाते हों, जायें; वहाँ अपना सुख-दु:ख कहें, उनसे आशीर्वाद और प्रेरणा लें; तीर्थ-व्रत जो भी करते हो, करें; इनमें कोई बुराई नहीं है लेकिन उनसे एक परमात्मा की भक्ति माँगे, हृदय में उन परमात्मा को, श्वास में नाम को देखने का अभ्यास बढ़ायें जिसका निर्देश आपके आदिशास्त्र गीता में है जिसे सही-सही समझने के लिए गीता की यथावत् व्याख्या 'यथार्थ गीता' का अध्ययन मनन करते रहें।

इसी प्रकार माता मीरा जब पहली बार ससुराल गयीं तो परम्परा के अनुसार उन्हें मांस पकाने को कहा गया। मीरा ने कहा– मैं मांस नहीं पकाऊँगी। सास-ननद ने कहा– यह क्षत्रियों का घर है। यहाँ ढोल-मजीरे नहीं बजते, तलवारें चलती हैं। लोग मांस नहीं खायेंगे तो दुबले हो जायेंगे। पुरोहित ने कहा– यह देवी का प्रसाद है। मीरा ने कहा– पुरोहितजी! देवी तो माँ होती है। वह जीवन देती है, प्राण नहीं लेती। निरुत्तर पुरोहित क्रोध प्रदर्शित करते हुए बोला कि हमसे भूल हुई जो स्त्री से बात की। आज से पाँच दिनों तक हम मौनव्रत धारण करेंगे। वह चला गया।

वस्तुत: भारत में कदाचित् ही कोई राजघराना हो जहाँ देवी छोड़कर भगवान की पूजा होती हो। यह तो संत-महात्मा ही वहाँ जाकर भगवान की चर्चा कर दिया करते थे। भारत में धर्म जो मूल रूप में जीवित है, वह संतों की चिन्तनधारा में सुरक्षित रहा। राजपूताना में और शेष भारत में भी हर राजघराने की अलग-अलग देवियाँ हैं। राजा लोग आपस में लड़ते ही रहते थे। हर देवी ने अपने राजा को जिताने के लिए दूसरे राजपूत राजा का सर्वनाश कर डाला; और जब साका या जौहर करने का अवसर आया तो कोई भी इस प्रकार की देवी दिखाई नहीं पड़ी। वास्तविकता तो यह है कि आपके शास्त्रों के अनुसार भगवान के स्थान पर अपनी पूजा करानेवाली और भगवान से भी अधिक अपना प्रभाव बतानेवाली कभी कोई देवी हुई ही नहीं।

शुम्भ-निशुम्भ

देवी द्वारा शुम्भ-निशुम्भ और उनके सेनापतियों के संहार की कथा द्वारा लेखक ने प्रकृति की नि:सारता समझाने का ही प्रयास किया था किन्तु लोगों ने जीने-खाने के लिए इसे वाह्य देवी का रूप दे दिया। इस कथानक में है कि माता पार्वती हिमालय की गुफा में तपस्या करती थीं, गंगा में स्नान करती थीं। शास्त्रों में गंगा के दो स्वरूप हैं। एक गंगा तो गंगोत्री से निकलती हैं, दूसरी हैं ज्ञान-गंगा जिसमें अवगाहन करने के पश्चात् पाप कभी आपका पीछा नहीं करते, आप सदा-सदा के लिए परम पवित्र हो जाते हैं–

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।। *(गीता, ४/३८)*

अर्जुन! इस ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला नि:सन्देह कुछ भी नहीं है। वह मिलेगा कहाँ? **'तत्स्वयं योगसंसिद्धः काले'–** योग के आरम्भ में नहीं, मध्य में नहीं, परिपक्व अवस्था काल में, पूर्णत्व काल में **'आत्मनि विन्दति'**– हृदय-देश में उसे विदित करोगे। प्राप्ति के साथ जो जानकारी

मिलती है, उसका नाम ज्ञान है। उस ज्ञान-गंगा में नहानेवाला कभी अपवित्र नहीं होता।

उन्हीं दिनों असुरराज शुम्भ-निशुम्भ के अत्याचारों से इन्द्रसमेत सभी देवता संतप्त थे। ये दोनों असुर बहुत ही सुन्दर थे। सृष्टि में सबसे सुन्दर! इन्होंने पुष्कर में उग्र तपस्या कर ब्रह्मा से वरदान पाया था कि देवता भी इन्हें जीत नहीं सकेंगे। अपने पराक्रम से तीनों लोकों में इन्होंने आतंक मचा रखा था। देवताओं ने अपनी रक्षा के लिए ब्रह्मा से उपाय पूछा। ब्रह्माजी ने कहा कि पूर्वकाल में देवी ने ही महिषासुर से आप सबकी रक्षा की थी। उन्होंने वचन दिया था कि आप जब भी उन्हें पुकारेंगे, वह आप सबकी रक्षा करेंगी। इसी परामर्श के अनुसार सभी देवता मिलकर देवी की स्तुति कर रहे थे।

पार्वती स्नान करने जा रही थीं, उन्होंने पूछा– आप किसकी स्तुति कर रहे हैं? पार्वती के अन्तर्कोश से एक स्वरूप निकला, उसने कहा– ये हमारी स्तुति कर रहे हैं। शरीर के कोश से निकलने के कारण उनका नाम कौशिकी, शिवा, अम्बिका इत्यादि पड़ गया। यह कोई देवी नहीं, बल्कि पार्वती के पंचकोशों से निर्मित अन्तर्दृष्टि थी, उसने प्रकृति की वास्तविकता को जान लिया। पार्वती के मुखमण्डल पर कालिमा आ गयी। यह कालिमा प्रकृति की थी कि काल होता क्या है और उसकी पहुँच कितनी है? उसकी पहचान हो गयी। वह कौशिकी से काली थी। उसमें हड्डी, पसली, कंकाल मात्र था, लाल-लाल आँखें बाहर निकली हुई दिखाई पड़ रही थीं, पेट बावली (गड्ढे) की तरह था। काल के द्वारा संसार का जो चक्र चल रहा था, उसका यही स्वरूप दिखाई पड़ा।

उस समय असुरराज शुम्भ और निशुम्भ ने कौशिकी को आकर्षित करना चाहा। उसके सेनापति धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज इत्यादि ने शुम्भ के वैभव का प्रलोभन दिखाया। शुम्भ अर्थात् सृष्टि का सौन्दर्य! निशुम्भ अर्थात् न होते हुए भी जो सत्य प्रतीत होता है। वास्तव में उसका

कोई अस्तित्व नहीं है। शुम्भ के वैभव-सौन्दर्य में थे हाथी, घोड़े, महल इत्यादि सृष्टि के सौन्दर्य! उस सौन्दर्य की नश्वरता, उसकी कालिमा का वीभत्स दृश्य कौशिकी के समक्ष आया तो उसे इस वैभव से अरुचि हो गयी। यहीं है कि काली असुरों की सेना को सेनापति चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज इत्यादि को हाथी-घोड़े-रथ समेत खा गयी। जब देवी ने संघर्ष किया तो सारे देवों की शक्तियाँ भी उनके साथ सम्मिलित हो गयीं। सभी देवताओं के अस्त्र-शस्त्र भी आ गये। जब सारी दैवी शक्ति एक हो गयी तो दैवी सम्पद् जीत गयी, शुम्भ और निशुम्भ मारे गये। यही है कि असुरों को देवी ने मारा। काल की गति सदा के लिए शान्त हो गयी। द्रष्टा अपने परमात्म स्वरूप में स्थित हो गया। जगत्रूपी रात्रि का संचालन करनेवाली कालरात्रि पर विजय प्राप्त हो गयी। शनैः-शनैः उत्कर्ष करते हुए जब दैवी सम्पद् पूर्ण हुई, काल की गति सदा के लिए शान्त हो गयी, काली विलीन हो गयी, शेष बचती है महागौरी!

इसके पश्चात् काल की गति आगे नहीं है। आगे है ज्योतिर्मय परमात्मा! केवल उनकी विभूति है। अब प्रकृति जन्म दे, मृत्यु दे– ये संस्कार कट गये। जन्म-मृत्यु से परे परम तत्त्व परमात्मा है। वह सहज प्रकाशस्वरूप है। प्रकृति के मिटते ही ईश्वरीय विभूतियाँ उतर आती हैं। शिव के शरीर में यह विभूति रमी रहती है–

सुकृत संभु तन बिमल विभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।।

वही शिव तत्त्व है। **'कः पूजनीयं शिवतत्त्वनिष्ठः।'** सृष्टि में पूजनीय कौन है? जो शिवतत्त्व में स्थित है, वह महापुरुष। वह शंकाओं से अतीत हैं, शंकर कहलाते हैं। प्रेम ही पार्वती है। प्रेम के द्वारा ही इस काल पर विजय प्राप्त होगी। प्रेम के द्वारा चिन्तन इस कसौटी पर पहुँचा तो कालरात्रि– काल के लिए भी रात्रि! वह कालजयी हो गयी इसलिए कालरात्रि! काल पर विजय प्राप्त कर लिया। यह पार्वती की अंतरंग योग्यता थी। उसके पश्चात् काल की पहुँच ही नहीं रही। काली स्तब्ध हो

गयी, खड़ी हो गयी, मिट गयी। ज्योतिर्मय शिवतत्त्व मात्र शेष बचा। उसमें जहाँ प्रतिष्ठित हुई, तहाँ सिद्धिदात्री! परम सिद्धि परमात्मा सध गये। स्वयं सिद्धि को प्राप्त किया, दूसरों को सिद्धि प्रदान करने की क्षमता आ गयी।

सृष्टि का जहाँ तक प्रसार है, वहाँ तक माया है, काल की गति है। काल के दो स्वरूप होते हैं–

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया।।
तेहिं कर भेद सुनउ तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ।।
एक दुष्ट अतिसय दुःख रूपा। जा बस जीव परा भवकूपा।।
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहीं निज बल ताकें।।

(मानस, ३/१४/२-६)

जब संसार का ऐसा दृश्य दिखाई पड़ा तो सहज ही उससे छुटकारा मिल गया। वहाँ अविद्या समाप्त हो गयी। अब दैवी सम्पद् या विद्या का उपयोग भी समाप्त हो गया। तहाँ **'शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।'** *(गीता, १२/१७)*– इस स्थिति में शुभ-अशुभ का संहार हो जाता है। संहार करनेवाली प्रशक्ति का नाम है शिव। संहार के साथ हृदय श्मशान हो जाता है। संहार के उपरान्त जो अवशेष बचता है, वह है परम तत्त्व परमात्मा, ज्योतिर्मय शिव! प्रकृति का अन्तिम कदम यहीं तक पड़ता है। इसके बाद वह सदा के लिए शान्त हो जाती है। उसकी जीभ निकल आती है। वह न बायें जाती है, न दायें! वह न आगे जाती है, न पीछे। प्रकृति सदा के लिए विलीन हो जाती है। कालिमा खत्म, स्वरूप हो जाता है महागौरी! शरीर का रंग गोरा है तो उसे महागौरी नहीं कहते। शरीर तो एक वस्त्र है– **'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय'**– पुराना वस्त्र फेंका, नया पहन लिया। वस्त्र का रंग क्षणिक होता है। गोराई है अन्तःकरण की। शुभाशुभ संस्कारों का अन्त हो जाने के पश्चात् आत्मदर्शन, स्पर्श और स्थिति, जहाँ प्रकाश ही प्रकाश है, उस ज्योतिर्मय ईश्वरीय प्रकाश की स्थिति मिल गयी तो महागौरी हो गयी, अब उसमें कभी अविद्या की कालिमा आना ही नहीं

है, न विद्या का प्रकाश; वह हो गयी सहज प्रकाशस्वरूप। महागौरी के साथ ही पार्वती ने नैष्ठिकीम सिद्धि को प्राप्त कर लिया। उसने खुद पाया और दूसरों को प्रदान करने की क्षमता आ गयी तो वह हो गयी सिद्धिदात्री!

यह पार्वती के अन्त:करण में प्राप्त होनेवाली उपलब्धि है, न कि पार्वती काली या गोरी हो गयीं। यह आन्तरिक स्थिति को व्यक्त करने का तरीका है, न कि किसी काली ने शंकर की छाती पर पाँव रख दिया। पहले सभी में यह कालिमा रहती है। स्वरूप-प्राप्ति के साथ प्रकृति के अंधकार का अवसान हो जाता है तो ज्योतिर्मय स्वरूप ही शेष रह जाता है जिसमें कभी दाग लगना ही नहीं है। यह पूरा कथानक भगवद्-स्वरूप की प्राप्ति का चित्रण है।

नवदुर्गा :: नवरात्र पूजन

महाभागवत (देवीपुराण) में दुर्गा के नौ स्वरूपों या नौ देवियों का उल्लेख है जिनकी पूजा नवरात्र में नौ दिनों की जाती है। देवीपुराण में है कि जो शारदीय और बासन्तिक नवरात्र में दुर्गापूजा नहीं करते, वे पापी हैं। कोई शैव हो, वैष्णव हो, शाक्त हो, सूर्य-उपासक हो या गणेश का उपासक हो, सबको देवी का नवरात्र-पूजन करना चाहिए जिसमें 'महिषैश्छाग मेषकै:' *(देवी महाभागवत, ४६/२३)*, 'मत्स्य मांसाद्यैछाग काशर मेषकै:' *(४८/१६)*– मत्स्य-मांस इत्यादि, बकरा, काशर अर्थात् भैंसा और मेष अर्थात् भेड़ा के द्वारा मेरा पूजन करना चाहिए। नवरात्रि-पूजन द्वारा ही भगवान राम ने रावण पर विजय पायी थी, दशमी के दिन देवी की मिट्टी की प्रतिमा को उन्होंने समुद्र में विसर्जित किया था। इस प्रकार सबको नवरात्र-पूजन करना चाहिए।

नौ देवियों के नाम हैं– शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदात्री। वस्तुत: ये नौ अलग-अलग देवियाँ नहीं, बल्कि पार्वती जी के ही विभिन्न सम्बोधन हैं,

जैसे– उन्होंने हिमाचल के यहाँ जन्म लिया तो शैलपुत्री कहलायीं। उन्होंने घोर तपस्या की, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया तो उन्हें ब्रह्मचारिणी कहा गया। यह तपस्या उन्होंने चन्द्रमौलि शिव के लिए की इसलिए उन्हें चन्द्रघण्टा कहा गया। उनकी तपस्या इतनी उग्र थी कि ब्रह्माण्ड में उनकी तपस्या की गूँज होने लगी तो उनका नाम कूष्माण्डा पड़ गया। भगवान शिव से विवाह के उपरान्त उन्हें पुत्र हुआ तो स्कन्दमाता कही गयीं। कर्म करके ही उन्होंने लक्ष्य प्राप्त किया इसलिए कात्यायनी कही गयीं। दुर्धर्ष काल को भी कवलित करनेवाली होने से उन्हें कालरात्रि कहा गया। प्रकृति की कालिमा समाप्त हो जाने से वह महागौरी कही गयीं। भगवान के स्वरूप में स्थिति मिलनेवाली परमसिद्धि को उन्होंने प्राप्त कर लिया था और जो भी उनमें श्रद्धा रखे, उसे भी सिद्धि की प्रेरणा प्रदान करने वाली होने से उन्हें सिद्धिदात्री कहा गया। माता पार्वती के ये नौ विशेष गुण थे इसीलिए वे इन नामों से पुकारी गयीं, न कि ये अलग-अलग देवियाँ हैं।

गोस्वामी जी ने भी माता पार्वती की वन्दना में लिखा–

जय जय गिरिबरराज किसोरी। जय महेश मुख चंद चकोरी।।
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता।।

(मानस, १/२३४/५-६)

'**जय जय गिरिबरराज किसोरी**'– गिरिराज की किशोरी! बच्चे होते हैं तो उन्हें माता-पिता के नाम से पुकारते ही हैं कि उनकी बिटिया को बुलाओ। विवाह हो गया तो '**जय महेस मुख चंद चकोरी**'– जिसके साथ विवाह हुआ, उसके मुख की चकोरी हो जाती है; लोग कहते हैं कि उनकी दुलही को बुलाओ। संतान हो जाने पर कहते हैं– गुड़िया की, गुड्डी की माताजी को बुलाओ। वृद्ध हो जाने पर '**जगत जननि**'– वह सबकी माता हो जाती हैं, '**दामिनि दुति गाता**'– जीवनभर की जानकारियों से भावी पीढ़ियों को आलोकित करती हैं। भारतीय संस्कृति में स्त्रियों के ये आदर्श सम्बोधन सदा से रहे हैं।

माता पार्वती के ये नौ नाम उसी प्रकार हैं जैसे भगवान श्रीकृष्ण के अनेकों नाम कहे जाते हैं। श्यामवर्ण होने से उन्हें कृष्ण कहा जाता था, आज भी किसी लड़के का रंग काला है तो उसका नाम कल्लू रख देते हैं। उस समय भाषा संस्कृत थी तो कह दिया कृष्ण! लड़की श्याम वर्ण की हुई तो कह दिया कृष्णा। कृष्ण सम्बोधन लोगों को इतना प्रिय था कि आज भी 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' की रट लगी है। जब उन्होंने गोचारण किया तो गोपाल। कालिया नाग को नाथा तो नागनथैया की जय। गोवर्धन उठाया तो गिरधारी। मुर दैत्य को मारा तो मुरारी। जरासंध को भुलावा देकर युद्ध के मैदान से निकल गये तो रणछोड़। द्वारिका गये तो द्वारिकाधीश। इसी तरह अर्जुन के दस नाम थे। राजकुमार उत्तर ने कहा था– यदि आप अर्जुन हैं तो अपने दस नामों का परिचय दें। अर्जुन ने बताया। इसी प्रकार पार्वती के ये नाम हैं। ये नाम कहीं से आते नहीं, कृतित्व के आधार पर बनते ही चले जाते हैं।

नवरात्र-पूजन का विधान भी शाक्त मतावलम्बियों द्वारा प्रचारित आधुनिक पूजन है। वस्तुत: भारत में शारदीय नवरात्र में विजयादशमी और वासन्तिक नवरात्र चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी को भगवान राम का जन्मदिन मनाया जाता है। रावण के दस सिरों का हरण होने से आजकल उत्तर भारत में विजयदशमी को बहुत से लोग दशहरा कहने लगे हैं जबकि ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को दशहरा मनाया जाता है। ब्रह्मपुराण (६३/१५) में है कि यह तिथि दस पापों को हरती है इसलिए दशहरा कहलाती है। गंगा जब पृथ्वी पर आई थीं, उस समय ज्योतिष के अनुसार दस योग थे– ज्येष्ठ का महीना था, शुक्ल पक्ष था, इसी प्रकार दशमी तिथि, मंगलवार, हस्त नक्षत्र, व्यतीपात, गर करन, आनन्द योग, कन्या राशि में चन्द्र और वृष राशि में सूर्य थे। आरम्भ में यह पर्व दशाश्वमेघ घाट पर गंगा-स्नान, पूजन और दान से सम्बन्धित था; किन्तु धीरे-धीरे यह किसी भी बड़ी नदी में स्नान-दान से मनाया जाने लगा है।

आश्विन शुक्ल दशमी को विजयादशमी कहते हैं। इसी दिन भगवान राम ने लंका के राजा रावण पर विजय प्राप्त किया था जिसकी स्मृति में प्रतिपदा से दशमी – इन दस दिनों तक भारतभर में और विदेशों में भी रामलीलाएँ होती हैं और दशमी को रावण की आकृति जलायी जाती है।

त्रेता युग में रावण के अत्याचार से मृत्युलोक से लेकर देवलोक तक के सभी प्राणी त्रस्त थे–

भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावण राज करइ निज मंत्र।। *(मानस, १/१८२ क)*

निशाचरों के आतंक से **'सुरपुर नितहिं परावन होई।'–** देवलोक में नित्यप्रति भगदड़ मची रहती थी। **'रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा।।'**– रावण आ रहा है, क्रोध में है, इतना सुनते ही सभी देवता मेरु पर्वत की कन्दराओं में छिप गये। अब देवियाँ कहाँ तक भागतीं? रावण उन सबको पुष्पक विमान में भरकर लंका ले आया। देवियों के आसुँओं से पुष्पक में धारा बह चली लेकिन रावण को दया नहीं आयी। उसने देवियों को छोड़ा नहीं–

देव जच्छ गंधर्व नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुन्दर वर नारि।। *(१/१८२/ख)*

कुछ को उसने स्वयं रखा, और शेष को असुरों में वितरित कर दिया। जब देवताओं का परिवार ही कैद हो गया, देवियाँ राक्षसों के घर में हो गयीं तो देवता ही छिपकर क्या करते? वे उन्हें छुड़ाने रावण की शरण में आ गये। रावण ने देवताओं को भी अपनी सेवा में लगा दिया। अग्नि रोटी पका रहा था, पवन पंखा चला रहा था, कोई दरबार में हाथ जोड़कर आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा था। शनिश्चर ने विरोध किया तो उसे बाँधकर सिंहासन के नीचे डाल दिया। सिंहासन पर चढ़ते समय रावण उसे लात मारता था, और उतरते समय भी! देवी-देवता पस्त हो गये थे। रावण ऋषियों से भी कर वसूलता था कि कुछ नहीं है तो रक्त ही दो।

कुछ लोग कहते हैं कि रावण ब्राह्मण था; किन्तु वास्तव में वह किसी का नहीं था। ब्राह्मणों का तो वह शत्रु ही था–

जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं।।

(मानस, १/१८२/६)

तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना।

(मानस, १/१८२/छन्द)

उन्हें बहुत प्रकार से त्रास देता था कि भगवान की कथा क्यों कहते हो? फिर भी कोई नहीं मानता तो उसे देश-निकाला दे देता था। विधाता की सृष्टि तो उसका देश था! उसके बाहर कौन टापू था, जहाँ भेजता? वास्तव में रावण के देश-निकाला का अर्थ था मृत्युदण्ड! वहाँ कुछ निशाचर ऐसे भी थे जो केवल मनुष्यों को खाते थे– '**दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी।**' *(मानस, ६/६१/११)* जैसे आजकल कोई महात्मा केवल दुग्ध-अहारी होता है, कोई छाछ-अहारी होता है वैसे ही राक्षसों में कुछ मनुज-अहारी थे, देशनिकालावालों को खा जाते थे, उनका काम चल जाता था। सताये हुए सभी लोग ब्रह्माजी के पास गये–

सुर मुनि गंधर्बा मिल करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका।।

ब्रह्माँ सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई।।

(मानस, १/१८३, छन्द)

ब्रह्मा ने कह तो दिया कि परमात्मा की शरण जाओ, लेकिन शरण जाने की विधि विधाता भी नहीं जानते थे। कोई बैकुण्ठ जाने को कह रहा था, कोई कहता था कि भगवान क्षीरसागर में रहते हैं। इस प्रकार सुझाव तो बहुत से आये लेकिन निर्णय नहीं निकला–

तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ।।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।

(मानस, १/१८२/४-५)

शंकर जी ने बताया कि भगवान तो सर्वत्र हैं, यहाँ भी हैं। उनको ढूँढ़ निकालने की विधि प्रेम है। मैंने पढ़ा नहीं, सुना नहीं, जाना है। प्रेमपूरित हृदय से प्रार्थना करो। प्रार्थना हुई, सुनवाई भी हो गयी, आकाशवाणी हुई कि मैं तुम्हारे लिए नर-वेश धारण करूँगा। कश्यप-अदिति ने पूर्वजन्म में बड़ा तप किया है, वे अयोध्या नरेश दशरथ और कौशल्या के रूप में हैं, मैं उनके यहाँ अवतरित होऊँगा।

सृष्टि के सारे जीव, सभी महापुरुष, देवता, विप्र, मानव, सभी लोग प्रतीक्षा में थे। जब प्रभु के प्रगट होने का समय आया तो वहाँ पहले से ही खुशियाँ मनायी जाने लगीं। पहले देवताओं ने खुशियाँ मनायी, फिर अवधवासियों ने खुशियाँ मनाना शुरु किया, जिसकी परम्परा चलती रही–

जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना।।

(मानस, १/३३/८)

जो-जो प्रतीक्षा में थे, सबने उत्सव मनाया। यह उत्सव महीनों चलता रहा– **'मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।'** *(मानस, १/१९५)* सूर्य वहीं स्थिर हो गये, प्रकाश की व्यवस्था स्वत: हो गयी, सब खुशियाँ मनाते रहे। कागभुशुण्डिजी, शंकरजी मगन होकर अयोध्या की गलियों में घूमने लगे। यहाँ किसी देवी उत्सव का उल्लेख नहीं है। लाखों वर्षों से जो अत्याचार चल रहा था, उसके विनाशक और अपने रक्षक भगवान की प्रतीक्षा में लोग खड़े थे। इस प्रकार वासन्तिक नवरात्र में रामनवमी के अवसर पर कई दिनों तक उत्सव रामजी के प्रादुर्भाव का मनाया जाता है, किसी देवी का नहीं।

इसी प्रकार जब रावण के वध की घड़ी आयी तो देवता, महर्षि, मनुष्य– सभी मंत्रमुग्ध होकर चारों तरफ से देख रहे थे, 'जय हो-जय हो' कर रहे थे। सिर कटने पर भी रावण मर नहीं रहा था–

जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि, नित नित नूतन मार।। *(मानस, ६/९२)*

विषयों का सेवन करने से उनके सेवन की इच्छा बढ़ती ही जाती है। कई महात्माओं में देखा जाता है कि घर से मोह हटा तो कुटिया में मोह हो गया, कुटिया से छोड़ा तो छड़ी में मोह हो गया, छड़ी से कमण्डल में हो गया। भजन छोड़कर जहाँ कहीं भी दृष्टि पड़ी तो वह मोह है। यही रावण के सिरों का बढ़ना है। यहीं **'नाभिकुंड पियूष बस याकें।'** *(६/१०१/५)*– नाभि अर्थात् केन्द्र! जहाँ संस्कारों का संग्रह होता है, वहीं आत्मिक संचार भी है जो मोह से आवृत्त है। परावाणी ही बाण है। जब चिन्तन परावाणी की कसौटी तक पहुँच गया तो राम का बाण लगते ही आत्मिक संचार, जो मोह में व्यय हो रहा था, सिमट कर राम में आ गया। मोह धराशायी हो गया। अब रावण कभी नहीं जियेगा। मोह के मिटते ही सिरों की वृद्धि समाप्त। वहीं दशानन का अन्त है। यही विजयादशमी सारी सृष्टि ने मनाया और जब राम का राज्याभिषेक हुआ तो लक्ष्मी का ऐश्वर्य जो बिखरा था, अवध में आ गया–

रामराज बैंठें त्रैलोका। हरषित भये गयेउ सब सोका।।

(मानस, ७/१९/७)

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।

(मानस, ७/२०/६)

राम के राज्य में कोई कमी नहीं थी। कागभुसुण्डिजी कहते हैं–

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा।।
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका।।
जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निसा नसानी।।
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने।।
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ।।

मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा।।
धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधि नाना।।
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका।।

(मानस, ७/३०/१-८)

हे गरुड़जी! धर्म के तड़ाग में, परम धर्म परमात्मा है, उसके चिन्तन में, जो कर्म की प्रवृत्ति थी– विवेक, वैराग्य, शम, दम इत्यादि – ये कमल खिल गये। कौन-सा तालाब? धर्म का तालाब! एक ईश्वर को धारण करना ही धर्म है। उसमें ज्ञान अर्थात् परमात्म-दर्शन के साथ मिलनेवाली जानकारी और जानकारी के साथ ही भगवान के द्वारा जो प्रमाण मिलता है, वह विज्ञान अर्थात् बेतार का तार, वे कमल '**बिकसे बिधि नाना**'– विकसित हो गये, अविद्यारूपी रात्रि समाप्त हो गयी। उस रात्रि में विचरण करनेवाले जीव समाप्त हो गये। यह प्रताप-रवि कहाँ उगा? **'यह प्रताप रबि जाके, उर जब करहिं प्रकास।'** *(मानस, ७/३१)*– यह प्रतापरूपी सूर्य हृदय में प्रकाशित होता है। कागभुसुण्डिजी ने कहा–

राम भगति चिन्तामनि सुन्दर। बसहिं गरुड़ जाके उर अन्तर।।
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती।।

(मानस, ७/११९/२-३)

रामराज्य में घर-घर यही मणिदीप जल रहे थे–

मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची। *(मानस, ७/२६ छन्द)*

इस प्रकार जब रावण मारा गया तो रामजी के विजय का उत्सव सभी ने मनाया। उनका राज्याभिषेक होते ही तीनों लोक शोकमुक्त हो गये। लाख वर्षों के दुःख का कारण समाप्त हो गया। अन्धकार दूर हुआ। जो देवता रात-दिन गुफाओं में छिपते थे, उनका भय समाप्त हो गया, उनके बाल-बच्चे सब सुरक्षित हो गये। मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो गया। इस प्रकार विजयादशमी का भी उत्सव रामजी का है, न कि किसी देवी का। देवता

और उनकी देवियाँ तो रावण के समय में मारे-मारे फिर रहे थे, उनकी पूजा कोई क्यों करता! भविष्योत्तर पुराण में दीपावली का उत्सव भी भगवान राम की विजय के उपलक्ष्य में मनाने की चर्चा है। वहाँ एक श्लोक दो अर्थोंवाला आया है–

उपशमित मेघनादं प्रज्ज्वलित दशाननं रमित रामम्।
रामायणमिव सुभगं दीपदिनं हरतु वो दुरितम्।। *(१४०/७१)*

स्पष्ट है कि चैत्र में भगवान राम का जन्मोत्सव और अश्विनी में रामजी का विजयोत्सव मनाने की परम्परा है। नवरात्रियों में दुर्गा-पूजन का उल्लेख किसी प्राचीन आर्षग्रन्थ में नहीं मिलता।

भगवान शिव की मर्यादा का हनन

महाभागवत (देवीपुराण) में है कि शंकर जी ने पूर्ण प्रकृति को पत्नीरूप से प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या किया। (रामायण में है कि शंकर को पाने के लिए पार्वती ने तपस्या किया था, यहाँ उसका उल्टा लिखा हुआ है।) शंकर को ऐसा करते देख ब्रह्मा और विष्णु भी तपस्या करने लगे। उनकी इच्छापूर्ति के लिए देवी स्वयं विराट रूप धारण करके आयीं तब ब्रह्मा चारों दिशाओं में घबड़ा कर देखने लगे, इससे उनको चार मुख हो गये। विष्णु जी डरकर सागर में छिप गये। केवल शंकर जी बैठे रहे। तब शंकरजी से देवी ने प्रसन्न होकर कहा कि कोई बात नहीं है, दक्ष के यहाँ उत्पन्न हो करके मैं प्रकृति आपकी भार्या बनूँगी। शंकरजी से विवाह के पश्चात् दक्ष के यज्ञ में जाने के लिए सती ने हठ किया। शंकरजी ने बहुत समझाया। सती अपने निश्चय पर अडिग रही इसलिए शंकरजी को अपना प्रभाव दिखाने के लिए सती ने अपना विराट स्वरूप दिखाया जिसे देखकर शंकरजी घबड़ा गये, अपनी आँख मूँद लिये और इधर-उधर भागने लगे। जिस भी दिशा में जाते थे, वहाँ उन्होंने देवी को देखा तो आँख मूँदकर बैठ गये (रामचरितमानस में है कि राम की परीक्षा लेते समय सती ने हर दिशा

में राम को देखा, आँख मूँदकर बैठ गयीं। यहाँ उसी को उलट दिया गया है)। फिर सती से उन्होंने कहा कि अपनी पत्नी समझकर हमने आपको आदेश देने का अपराध किया, हमें क्षमा करें। आपकी जो रुचि हो, जैसी इच्छा हो वैसा आप करें। शंकरजी ने जाने की आज्ञा प्रदान कर दी।

देवीपुराण में है कि यज्ञ में माता ने सती का आदर किया और कहा कि हे माता! मेरा भाग्य कि आप मेरे यज्ञ में आयीं लेकिन आपके दुर्बुद्धि पिता शिव का अपमान कर रहे हैं, उनका महत्त्व नहीं जान रहे हैं। यज्ञ में शंकर का भाग न देखकर सती को बहुत क्रोध आया। उन्होंने अपना छाया शरीर का एक रूप बनाया और अन्तर्धान हो गयीं। उस छाया शरीर को ही दक्ष ने भला-बुरा कहा और छाया सती ही यज्ञकुण्ड में कूद पड़ी। उनके यज्ञकुण्ड में कूदते ही अग्नि बुझ गयी।

इसी पुराण में है कि सती के वियोग से शंकरजी दु:खी हो गये। जब शिवजी ने सती के दग्ध शरीर का भस्म अपने शरीर पर लेपन कर लिया तो कामाग्नि से उन्हें बड़ी पीड़ा हुई और इससे जलते हुए शिव यमुना नदी में कूद गये। उनके ताप से यमुना का जल श्याम वर्ण का हो गया। शिव ने देवी की बहुत प्रकार से प्रार्थना की, तब देवी ने कहा कि यज्ञ में जले हुए मेरे छाया शरीर को प्रणाम कर सिर पर लेकर आप भ्रमण करें। जहाँ-जहाँ मेरे शरीर का अंश गिरेगा, वहाँ-वहाँ शक्तिपीठों की स्थापना हो जायेगी। कामाख्या पीठ में तपस्या करके आप मुझे प्राप्त करेंगे। शिव ने छाया शरीर को ऊपर उठा लिया और प्रसन्नतापूर्वक धरती पर नाचने लगे। भगवान विष्णु ने सुदर्शन चक्र से शव के टुकड़े-टुकड़े कर दिया इस पर शंकरजी ने विष्णु को श्राप दिया कि तुम्हें भी पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ेगा। जिस प्रकार तुमने सती के छाया शरीर का मुझसे वियोग कराया है, उसी प्रकार रावण भी तुम्हारी पत्नी के छाया शरीर का हरण कर तुम्हें भी वियोगी बनायेगा। शंकरजी ने कामरूप में छाया देवी को पाने की तपस्या की। तब देवी ने कहा कि आपने छाया और मेरे रूप के लिए तपस्या की है इसलिए

मैं गंगा और पार्वती दो रूप में आपकी पत्नी बनूँगी। छाया शरीर को आपने सिर पर उठाया था तो गंगा रूप में मैं आपके सिर पर रहूँगी और पार्वती बनकर आपके घर की देखभाल करती रहूँगी।

जब देवी ने हिमालय के यहाँ मैना के गर्भ से जन्म लिया तो हिमालय ने देवी को प्रणाम किया और उनसे ब्रह्मविद्या प्रदान करने का अनुरोध किया। पार्वती ने अपने पिता को उपदेश दिया जो देवी गीता या भगवती गीता कहा जाता है। इसमें बताया गया है कि बच्चे का जन्म किस प्रकार होता है और इसका नाम दे दिया है ब्रह्म-विद्या! उपनिषद! योगशास्त्र! जैसा कि गीता से नकल किया गया हो–

इति श्री महाभागवते महापुराणे श्रीभगवतीगीतासूपनिसत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीपार्वतीहिमालयसंवादे ब्रह्मयोगोपदेशवर्णन नाम सप्तदशोऽध्यायः।

भगवती गीता के श्लोकों को देखिये– *'मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। तेषामपि सहस्त्रेषु केचित् मां वेत्ति तत्त्वतः।।'* इसी तरह से *'अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्.....'*– यह भी देवी गीता में है। इसी तरह से *'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मत्परः मामेवैष्यसि संसारदुःखैर्नैवहि बाध्यसे।।'* इस तरह से गीता के श्लोकों में कुछ मिलाकर भगवती गीता की संरचना करके जनता को भ्रमित और भगवान श्रीकृष्ण की वाणी आदिशास्त्र गीता को विकृत करने का प्रयास किया गया है।

देवी पुराण में लिखा है कि अपने पिता हिमालय को ही उपदेश देने के बाद भगवती दुर्गा पुनः शिशुरूप में आकर अपने माताजी का दूध पीने लगीं। शंकरजी उनकी प्राप्ति के लिए हिमालय पर जाकर तपस्या करने लगे। कामदेव के शरीर का भस्म अपने सम्पूर्ण शरीर पर लगा करके मन में देवी का ध्यान करते हुए तीन हजार वर्षों तक हिमालय पर शंकरजी ने तपस्या की और सप्तर्षियों से आग्रह किया (कहीं लिखा कि सती शरीर का भस्म शंकरजी ने अपने शरीर पर लगाया, जमुना में कूदे; यहाँ लिखते हैं कि कामदेव की राख शरीर पर लगाया। जहाँ जो मन में आया, लिखते गये)।

देवी पुराण में है कि सप्तर्षियों से महादेव ने कहा कि हे महामुनियों! जब मैं उन प्राणबल्लभा पार्वती को प्राप्त कर लूँगा तो उन देवी की सभी प्रकार से निरन्तर सेवा करता रहूँगा। वह देवी जहाँ भी जायेंगी, मैं भी वहीं जाऊँगा। कभी आधे क्षण के लिए भी मैं उनको नहीं छोड़ूँगा। जो उन्हें प्रिय नहीं है, मैं वह काम कभी नहीं करूँगा। अब आप लोग जाइये और मैं उन्हीं गिरिराजकुमारी का ध्यान करता हुआ इसी कानन में स्थित रहूँगा। इस तरह से भगवान शंकर पार्वती को पाने के लिए तपस्या करने लगे।

इसी बीच तारकासुर से त्रस्त देवताओं ने शंकरजी को समाधि से जगाने के लिए कामदेव को शंकरजी के पास भेजा। शंकरजी ने कामदेव को भस्म कर दिया और इसके पश्चात् पार्वतीजी ने शंकरजी को दर्शन दिया। शंकरजी ने देवी का वह रूप देखने की प्रार्थना की जो उन्होंने दक्ष के यज्ञ में धारण किया था। देवी ने वह रूप धारण किया तो शंकरजी भूमि पर लेट गये और उनके चरण-कमलों को अपने हृदय पर रखा और एक हजार नामों से उनकी स्तुति किया।

शक्तिपीठों की स्थापना में नारी-अंगों का वर्णन, भगवती गीता में बच्चों की उत्पत्ति का वर्णन, विवाह के पश्चात् शिव-पार्वती के विहार का वर्णन इतना अश्लील है कि उसे हम सुन नहीं सकते, कह नहीं सकते। भगवान शंकर के कामजयी रूप को विकृत रूप से प्रस्तुत करना मर्यादित नहीं है।

इस ग्रन्थ में यह भी है कि शिव ने कहा कि हे देवी! आपके चरण कमल की रेणु सिर पर धारण करने का प्रयत्न मैंने किया उसके कितने ही कण गंगा में गिर गये और गंगा मुक्तिदायिनी बन गयी अर्थात् प्रभाव गंगा का नहीं है, भगवती के चरण रेणु का है। पुराण में यह भी है कि देवी की भक्ति से ही भगवान शिव कालकूट विष का पान करने में सक्षम हुए। भगवान शिव ने एक बार भगवती का स्वरूप देखा तो उन्हें स्त्रीरूप में आने की इच्छा हुई। उन्होंने देवी से प्रार्थना किया, फिर उन्होंने राधारूप में

अवतार लिया। एक गोप ने राधा से सम्बन्ध बनाने की कुचेष्टा की किन्तु भगवान शिव की इच्छानुसार वह अचानक नपुंसक हो गया। इसी प्रकार जब कार्तिकेय ने तारकासुर को मार डाला और पार्वती की गोद में बैठे तो विष्णु के मन में हुआ कि मैं भी देवी की गोद में बैठ करके स्तनपान करूँ। देवी उनकी इच्छा जान गयी और बोली– विष्णु! आपकी इच्छा पूर्ण होगी। जब देवी ने गणेश का निर्माण किया और उन्हें जीवन प्रदान किया तो विष्णुरूपी गणेशजी उनकी गोद में बैठकर उनका पयपान करने लगे। इस प्रकार विष्णु इत्यादि सभी देवी-देवता भगवती देवी के ही आज्ञावर्ती हैं। इसी ग्रन्थ में अन्यत्र है कि विष्णु देवी की ही आराधना करके दैत्यों का संहार कर पाते हैं। इस प्रकार शंकर की ही तरह विष्णु का भी अवमूल्यन देवी-पूजकों द्वारा किया जा रहा है।

भगवान राम के अस्तित्व का विलोपन

महाभागवत (देवी पुराण) में है कि ब्रह्मा इत्यादि की प्रार्थना पर विष्णु ने कहा कि मैं रावण से युद्ध करने में असमर्थ हूँ, मेरे लिए युद्ध जीतना सम्भव नहीं है फिर भी यदि जगदम्बा की कृपा हो तो मैं रावण को जीत सकता हूँ। किन्तु यदि रावण भी देवी की पूजा करेगा तो मैं उस पराक्रमी को कैसे मार सकूँगा? ब्रह्मा ने राम से कहा– नरोत्तम! सीता मंदोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुई थी इसलिए उसकी पुत्री है। रावण उन्हीं का अपहरण कर लंका ले आया इसलिए लंका का विनाश निश्चित हो जायेगा। ऐसे पापियों का भवानी अवश्य नाश करेंगी, आप चिन्ता न करें। राम ने भगवती की स्तुति की तो आकाशवाणी हुई कि रघुश्रेष्ठ! आप भय न करें। ब्रह्मा ने बेल वृक्ष के नीचे आपकी विजय के लिए हमारी नवरात्र की पूजा की है इसलिए आप शीघ्र ही राक्षसों को मार करके लंका को जीत लेंगे। देवी को प्रणाम कर राम युद्ध में प्रवृत्त हुए। देवी ने राम से कहा कि रावण को जीतने के लिए आप निरन्तर मेरा स्मरण करते रहियेगा। वानरों से पूजन सामग्री मँगाकर भगवान राम देवी का पूजन किया करते थे और उनकी पूजा

से संतुष्ट देवी ने राम के धनुष में प्रवेश किया, राम के बाण पर बैंठी तभी रावण मारा जा सका। इस प्रकार से पराक्रम राम का नहीं, देवी का है।

इस प्रकार महाभागवत (देवीपुराण) के अनुसार भगवान राम संकट से जब-जब विचलित हुए (समुद्र पर सेतु बनाने से पहले, कुम्भकरण के आक्रमण से घबरा कर), दुर्गा-पूजन किया तभी उन्हें सफलता मिली, तभी वह समुद्र पर सेतु बना पाये और रावण का संहार कर सके। जबकि गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं–

राम काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन।।
सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई।।
बिष्नु कोटि सम पालनकर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता।।

करोड़ों इन्द्र के समान वैभव-विलास, करोड़ों विष्णु के समान पालनकर्ता, करोड़ों शंकर के समान संहारकर्ता, करोड़ों ब्रह्मा के समान संरचना करनेवाले, करोड़ों दुर्गा के समान शत्रुओं का विनाश करनेवाले एकमात्र भगवान हैं। करोड़ों देवी-देवताओं से उनकी तुलना उसी प्रकार है जैसे कोई सैकड़ों करोड़ जुगनुओं को सूर्य के समकक्ष कहे। इस उपपुराण में है कि रामजी दुर्गा की पूजा किया करते थे। परमात्मा के अंशमात्र से असंख्य सृष्टि का सृजन, पालन और संहार होता ही रहता है। वह परमात्मा कौन-सी दुर्गा का पूजन करते? नवरात्र में देवी-प्रतिमाओं की स्थापना और दुर्गापूजा के प्रचार-प्रसार से जन-जन के मन में बसे हुए मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के आदर्शों को मिटाकर तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनी-हाकिनी-योगिनी इत्यादि से सेवित देवी की उपासना सिखाकर बच्चों में आप कौन-सा संस्कार डालने जा रहे हैं?

भगवान श्रीकृष्ण का अवमूल्यन

देवी पुराण के लेखक ने भगवान श्रीकृष्ण को काली का अवतार मानकर उनकी सफलता का श्रेय देवी को दिया है। इस देवी पुराण में है

कि जब पूतना ने कृष्ण को मारने के लिए उन्हें अपने वक्षस्थल पर लिया तो भगवान कृष्ण कालिका देवी के रूप में हो गये और उसे मारकर पुनः बाल कृष्ण का रूप धारण कर लिया। इसी प्रकार तृणावर्त जब कृष्ण को उड़ाकर आकाश में ले गया तो आकाश में कृष्ण ने काली का रूप धारण कर लिया। काली ने उस समय बाघम्बर धारण किया था। काली खड्ग से असुर का संहार कर पुनः श्यामसुन्दर के रूप में आ गयीं। कंस को मारते समय कृष्ण ने काली का रूप धारण कर कंस के बालों को पकड़ लिया और तलवार से कंस का सिर काट लिया। इसके बाद काली पुनः कृष्ण के रूप में आ गयीं और बलराम के साथ नाचने लगीं।

देवी का धाम गोलोक से पचास करोड़ योजन दूर बताया गया है। अपने धाम जाते समय भगवान श्रीकृष्ण ने काली का रूप धारण कर लिया और एक हजार सिंहों से जुते रथ पर बैठकर वह देवी अपने धाम कैलाश पर्वत पर चली गयीं जबकि उनका धाम गोलोक से भी करोड़ों योजन दूर लिख आये हैं और गयीं भी तो कैलाश जो भारत में ही हिमालय में है।

महाभारत को विकृत करने का प्रयास

देवी की महिमा-महिमा बताते-बताते देवी पुराण के लेखक ने सांस्कृतिक ग्रन्थ महाभारत को भी विकृत करने का प्रयास किया है। इसमें है कि महाभारत युद्ध प्रारम्भ करने से पूर्व सभी पाण्डव रथों से नीचे कूदकर विजय के लिए जगदम्बा की स्तुति करने लगे। देवी ने कहा कि कृष्ण रूप से मैं आप सभी की रक्षा करूँगी। पाण्डवों द्वारा भगवती की स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने कहा कि मेरी कृपा से तुम पुनः राज्य को प्राप्त करोगे। अज्ञातवास के समय अपने छुपने का स्थान ढूँढ़ न पाने पर पाण्डवों ने देवी की स्तुति की। देवी ने उन्हें मत्स्य देश के राजा विराट के पास रहने का निर्देश दिया। वहाँ कीचक से भयभीत द्रौपदी देवी की शरण गयीं और देवी की कृपा से भीमसेन ने कीचक का वध कर दिया। अपने धाम जाते समय

द्रौपदी द्वारिका में समुद्र के किनारे सबके देखते-देखते कृष्ण के काली विग्रह में समा गयी। अर्जुन, भीम इत्यादि सभी पाण्डव महासागर में देह का त्याग करके स्वर्ग चले गये (जबकि महाभारत में इन सबका देहत्याग हिमालय में बताया गया है)। रुक्मिणी आदि पटरानियाँ शिव का रूप धारण कर उत्तम लोकों को चली गयीं। कृष्ण की अन्य भार्यायें भैरव रूप में बदल गयीं। इस प्रकार पृथ्वी का भार मिटाकर जगन्माता देवी अपने लोक को चली गयीं। यह सब कथायें महाभारत से मेल नहीं खाती। कहना न होगा कि देवी-उपासकों द्वारा संस्कृति-ग्रन्थ महाभारत को विकृत करके जनमानस में भ्रम फैलाया गया है।

इसी पुराण में वर्णन है कि जब कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का शम्बरासुर ने हरण करा लिया तो कृष्ण ने अधीर होकर योगमाया का स्तवन किया और कहा कि पूर्वजन्म में नारायण के रूप में बद्रिकाश्रम में मैंने आपकी पूजा की थी, आपने मेरी उस भक्ति को क्यों भुला दिया? मैं आपको प्रसन्न करने के लिए अम्बा-व्रत और नवरात्र-व्रत करूँगा। यदि मेरा पुत्र जीवित है तो उसे आप कृपया दिखायें। देवी ने प्रकट होकर कहा कि शम्बरासुर ने आपके पुत्र का हरण किया है। सोलह वर्ष का होने पर मेरी कृपा से वह स्वयं शम्बरासुर का संहार करके आपको प्राप्त होगा। इस प्रकार से महाभारत की कथाओं को जगह-जगह से विकृत करके केवल देवी के प्रभाव का विस्तार करने का प्रयास किया गया है।

व्यासजी और देवी

पुराणों और उप-पुराणों को व्यास जी का लिखा बताया जाता है जबकि महाभारत-युद्ध के समय ही व्यासजी अपनी माँ सत्यवती को लेकर तपस्या करने चले गये थे और अपनी लेखनी को विश्राम दे दिया था। अभिमन्युपुत्र परीक्षित के शापित हो जाने पर उन्हें भागवत की कथा व्यासजी के शिष्य शुकदेवजी ने सुनायी थी। परीक्षितपुत्र जन्मेजय के नाग-

यज्ञ में कथा कहने की परम्परा में सूतजी आ गये थे।

महाभागवत देवी पुराण में है कि अठारह पुराणों को लिखने के बाद भी व्यासजी अशान्त रहे। तब देवीभक्त वेदव्यास ने हिमालय पर जाकर कठोर तपस्या की। भगवती ने उन्हें दर्शन दिया और ब्रह्मलोक जाने के लिए कहा। व्यासजी ने वहाँ सारे वेदशास्त्र देवी के चरण-कमल के नीचे देखा। वही पर महाभागवत देवी पुराण भी देखा। वहाँ से व्यासजी धरती पर आये और उन्होंने महाभागवत देवी पुराण की रचना की। इससे यह लगता है कि इसे व्यासजी ने नहीं लिखा था; यह तो पहले से ही ब्रह्मलोक में लिखी हुई थी।

भगवती दुर्गा की व्यासजी ने स्तुति की है कि ये कभी दो हाथ, कभी चार हाथ, कभी आठ, कभी दस.....अठारह.....अनन्त हाथों से युक्त हैं। ये दिव्य शरीर धारण करती हैं। यही मूल प्रकृति जगदम्बा हैं, दक्षकन्या सती हैं, हिमवंत की कन्या पार्वती हैं, विष्णु की भार्या लक्ष्मी हैं तथा ब्रह्मा की भार्या सरस्वती हैं। इस प्रकार से यह लेखक घूम-फिरकरके तीन देवताओं और तीन देवियों के आगे-पीछे ही घूम रहा है।

व्यासजी देवी भक्त नहीं थे। उन्होंने जन्मपर्यन्त एक परमात्मा का गायन किया, वेद उनकी देन हैं, श्रीमद्भागवत उनकी देन है, गीता उनकी देन है, ब्रह्मसूत्र उनका है। इन सबमें उन्होंने एक परमात्मा की पूजन का निर्देश किया है। अब वह कैसे कह सकते हैं कि नहीं, नहीं अब तक हम झूठ कह रहे थे; प्रकृति ही सही है, प्रकृति ही देवी है। प्रकृति पर विजय दिलानेवाली साधना बतानेवाले व्यास कब से देवी अर्थात् माया-भक्त हो गये?

अभी आपने सच्चियाय माता के सन्दर्भ में जैन मुनि द्वारा देवी को प्रबोधित करते हुए देखा है (अर्थात् देवीपूजा तब से शुरु हुई है जब हिन्दू धर्म में जैन शाखा बनी)। वस्तुत: ढाई हजार वर्षों से लगातार गीता-शास्त्र पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था, शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था। शिक्षा के

अभाव में जनता हो गयी धर्म से अनभिज्ञ; इसलिए जिसके जो मन में आया, धर्म का नाम लेकर, व्यास जी का नाम लेकर लिखता चला गया। व्यास जी के हजारों वर्षों पश्चात् पुराण लिखे गये लेकिन सब-के-सब व्यास जी के लिखे बताये जाते हैं। अब तो 'व्यास' कथावाचकों की एक उपाधि बनकर रह गयी है। अत: किसी पुराण या उप-पुराण में व्यास जी का नाम देखकर भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए।

कल्पान्तर की कथा

महाभागवत देवीपुराण में है कि इसमें वर्णित घटनायें दूसरे पुराणों की कथाओं से मेल नहीं खाती तो इसे कल्प-कल्पान्तर की कथा मानकर इसमें अश्रद्धा नहीं करनी चाहिए। कल्प के बारे में कहा जाता है कि जब प्रलय में पृथ्वी डूब जाती है ब्रह्मा देवता सूर्य चन्द्रमा सब नष्ट हो जाते हैं तब कल्प का अन्त होता है और पुन: सृष्टि में नये ब्रह्मा नये देवी देवता और नये जीव पैदा होते हैं। जब यह कल्पान्तर की कथा है और उस कल्प के मनुष्य नहीं रह गये, देवी-देवता नहीं रह गये, ब्रह्मा नहीं रह गये तो उस प्रलय में क्या देवी नहीं डूब गयी होंगी? उस कल्प की देवी को इस कल्प के मनुष्यों में क्यों थोपा जा रहा है? इस कल्प के चारों युगों का इतिहास लोगों के सामने है जिसमें इस देवी या उसके कारनामों का कोई उल्लेख नहीं है।

देवी के पुजारी त्रिगुणमयी प्रकृति की पूजा कर रहे हैं। इन्होंने भारतीय इतिहास, परम्परा, संस्कृति, धर्म, आस्था के साथ खिलवाड़ किया है, ठेस पहुँचायी है। इनका कहना है कि भीम ने कीचक को नहीं मारा, देवी ने मारा। द्रौपदी की लाज कृष्ण ने नहीं, दुर्गारूपी कृष्ण ने बचायी। पूतना का वध कृष्ण ने नहीं, देवी ने किया। यशोदा को विश्वरूप देवी ने दिखाया। शंकरजी राधा के अवतार थे। इस तरह से जो कुछ भी थीं, देवी थीं; भगवान कुछ नहीं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, भगवान कृष्ण, जो

ज्योतिर्मय परमात्मस्वरूप हैं, इन सबको समाप्त करके एक देवी चरित्र को फैलाने का इन्होंने कुत्सित प्रयास किया है। इन्होंने भारत का इतिहास ही समाप्त कर दिया है। इस प्रकार रामकथा, कृष्णकथा, महाभारत की कथा, परमात्मा की कथा, एकेश्वरवाद जो सदा से रहा है, आदिशास्त्र गीता के श्लोकों को तोड़-मरोड़कर, वैदिक सिद्धान्त, उपनिषदों का सिद्धान्त – इन सबको नगण्य मानते हुए उसके ऊपर केवल एक देवी भागवत या देवी पुराण बना डाला।

जीने-खाने की व्यवस्था को ही विस्तार देते हुए बुद्धिजीवियों ने मंदिरों में माता पार्वती की मूर्ति लगाकर मांस और मदिरा-सेवन का मार्ग प्रशस्त किया है। इनके सेवन का औचित्य सिद्ध करने के लिए निगम का गोपनीय रहस्य कहकर आगम ग्रन्थों की रचना की गयी, सैकड़ों गोपनीय तांत्रिक ग्रन्थों की रचना की गयी, जिसमें देवी की उपासना के मंत्र, विधि, कवच, अर्गला, कीलक, कुञ्जिका, कादिविद्या, हादिविद्या, श्री इत्यादि यंत्रों एवं चक्रों का उल्लेख है। इनके ग्रन्थ गोपनीय हैं। कुलार्णव तंत्र में है कि जो इस मत में दीक्षित नहीं है उन्हें धन दे देना, अपनी स्त्री दे देना, प्राण तक दे देना किन्तु इन ग्रन्थों को मत दिखाना। देवी-उपासक लाल चन्दन लगाते, लाल सिन्दूर, लाल रोली, लाल साड़ी, लाल चुनरी, गुड़हल का लाल फूल और खाने-पीने के सभी पदार्थ जो लाल रंग लिये होते हैं, देवी को अर्पित करते हैं; किन्तु इनकी गद्दी, सम्प्रदाय कहीं देखने में नहीं आते। तंत्र में वाममार्ग के साधक कौल कहे जाते हैं। कौलमार्ग में पाँच उपहारों द्वारा देवी की पूजा की जाती है–

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
मकारं पञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकः।।

× × ×

अष्टैश्वर्य परम मोक्षम् मद्यपानेन शैलजे।
मांसभक्षणमात्रेण साक्षान्नारायणो भवेत्।।

× × ×

मैथुनेन महायोगी मम तुल्यो न संशयः।

वाममार्गी कौलों की साधना रात्रि के क्षीण प्रकाश में भैरवी चक्र बनाकर नीच जाति की नग्न स्त्रियों की पूजन से आरम्भ होता है–

चाण्डाली चर्मकारी च मातंगी मत्स्यकारिणी।
मद्यकर्मी च रजकी च क्षौरकी धनबल्लभा।
अष्टैता कुलयोगिन्या सर्वसिद्धि प्रदायिका।।

इन समाजविरोधी दलितविरोधी अश्लील आचरणों को देखकर भारतीय जनमानस ने कौलमार्ग, वाममार्ग, वज्रयान इत्यादि साधनाओं का बहिष्कार कर दिया। गोस्वामीजी ने भी इसकी निन्दा की है– **'कौल काम बस कृपिन बिमूढ़ा।'** इसी के लिए उन्होंने कहा– **'तजि श्रुति पंथ बाम पथ चलहीं।'**

एकाक्षरी मंत्रों का जाल एवं कीलक का भ्रम

इनके मंत्र निरर्थक एकाक्षरी होते हैं, जैसे– ऐं, ह्रीं, क्लीं, क्रौं इत्यादि। अभिचार अर्थात् मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, स्तम्भन, विद्वेषन जैसी क्रियाओं के लिए मंत्र के अंत में स्वाहा, वषट्, वौषट्, हुम्, फट् जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है। वौषट् द्वेष पैदा करने के लिए, फट् शस्त्र से मारने के लिए, हुम् शत्रुओं को स्थानच्युत करने के लिए, प्राण-हरण के लिए वषट् का प्रयोग करते हैं।

गीता में ओम् जपने का निर्देश है– **'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म'**। ओम् को एकाक्षरी मंत्र देखकर देवीपूजकों ने अपनी पूजा में तरह-तरह के एकाक्षरी मंत्रों का विधान किया है। किस साधक के लिए कौन मंत्र लाभदायक है इसके निर्णय के लिए कुलाकुल-चक्र, राशि-चक्र, षड्-चक्र, अकडम-चक्र इत्यादि पर विचार करके जिह्वाशोधन करके मंत्र को चैतन्य करने का विधान बताया गया और मंत्र की कुल्लुका बनाकर अर्थात् मूर्धा में उस मंत्र का न्यास करना होता है।

इन्होंने निरर्थक एकाक्षरी मंत्रों के गोपनीय अर्थ भी बना लिये; जैसे– सरस्वती-बीज 'ऐं' में ए = सरस्वती, बिन्दु (ं) = दुःखहरन; इस प्रकार ऐं अर्थात् देवी सरस्वती मेरे दुःखों को दूर करें। इसी तरह शक्तिबीज या मायाबीज 'ह्रीं' में ह = शिव, र = शक्ति, ई = महामाया तथा बिन्दु (ं) = दुःखहरन; अर्थात् शिवयुक्त शक्ति महामाया मेरे दुःखों का नाश करें। इसी तरह कामबीज या कृष्णबीज 'क्लीं' में क = कृष्ण या काम, ल = इन्द्र, ई = महामाया तथा बिन्दु (ं) = दुःखनाश; अर्थात् मन्मथ-मथन कृष्ण मुझे सुख प्रदान करें। इसी प्रकार कालीबीज 'क्रीं' में क = काली, र = ब्रह्म, ई = महामाया तथा बिन्दु (ं) = दुःखहरण; अर्थात् ब्रह्मस्वरूपिणी महाकाली मेरे दुःखों का नाश करें। इसी प्रकार 'दुं' दुर्गाबीज है जिसमें द = दुर्गा, उ = रक्षा तथा बिन्दु (ं) = दुःखनाश; अर्थात् दुर्गे मेरी रक्षा करो, दुःख दूर करो। इसी प्रकार 'हूं' कर्मबीज या कूर्चबीज है जिसमें ह = शंकर, ऊ = भैरव तथा बिन्दु (ं) = दुःखनाश; अर्थात् भयंकर भगवान शंकर दुःखों का नाश करें। इसी तरह से ओम् के स्थान पर तरह-तरह के एकाक्षरी मंत्रों की सृष्टि की गयी है जबकि एकाक्षरी मंत्र केवल 'ॐ' जपने का निर्देश गीता में है।

प्रत्येक अक्षर के ऊपर बिन्दु लगाकर जैसे कं, खं गं या यं रं लं वं इत्यादि अक्षरों को अनुनासिक (नाक के बल बोलकर) हर अक्षर का नया अर्थ बताकर इन लोगों ने एक एकाक्षरी कोश बनाया है। (चीन और तिब्बत के लोग नासिका का सहारा लेकर बोलते हैं) इससे लगता है कि अभिचारमूलक देवीपूजा चीन और तिब्बत से भारत में लायी गयी है। कहा जाता है कि बौद्ध भिक्षु नागार्जुन (जो ह्वेनसांग के बाद हुए थे) तारा देवी की पूजा तिब्बत से भारत ले आये। यह तारा, देवी के दस रूपों या महाविद्याओं में दूसरी है। स्पष्ट है कि देवी-पूजा विदेशी है, भारतीय नहीं है और यह आधुनिक भी है। इसका कोई इतिहास नहीं है। यही कारण है कि चीनी यात्री ह्वेनसांग ने प्रयाग के धर्म सम्मेलन में शिव, विष्णु, सूर्य,

गणेश, महावीर स्वामी और बुद्ध की पूजा का वर्णन तो किया किन्तु देवीपूजा या तंत्र साधना का कोई विवरण उनके यात्रा-वृत्तान्त में नहीं है अर्थात् ७०० ई० तक देवीपूजा का कोई इतिहास भारत में नहीं मिलता।

देवीपूजकों ने एक भ्रम यह फैला रखा है कि भगवान शंकर ने कलियुग में सभी मंत्रों को कीलित कर दिया है अर्थात् इन्हें निष्प्रभावी बना दिया है। अब यदि कहीं शक्ति है तो 'कलौकालीविनायकौ'– कलियुग में काली और गणेश की पूजा में ही दम है। इसके लिए एकाक्षरी मंत्रों का प्रयोग करना चाहिए जबकि सदैव से ओम् और राम जपने का शास्त्रसम्मत विधान रहा है जिसे देवीपूजकों ने निष्प्रभावी कहा है और इस प्रकार से आस्था पर कुठाराघात किया है।

इस ग्रन्थ में है कि वाराणसी में भगवान शंकर दुर्गातारक मंत्र देते हैं (विचारणीय है कि काशी का वाराणसी नाम आधुनिक है, प्राचीन नहीं है।) अभी तक मान्यता थी कि काशी में भगवान शिव राममंत्र देते हैं– **'कासीं मरत जन्तु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी।।'** परम्परा में भी शवयात्रा के समय 'राम नाम सत्य है' कहने की परम्परा है, 'दुर्गा-दुर्गा' कहने की नहीं। लेकिन इस पुराण में है कि भगवान शिव सदैव दुर्गा का ही स्मरण करते रहते हैं जबकि मानस में है कि–

मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहिं जपत पुरारी।।

× × ×

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहुँ अनंग आराती।।

× × ×

सिव सम को रघुपति ब्रत धारी। बिनु अघ तजी सती अस नारी।।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति का विलोपन करते हुए देवीपूजन के उत्साह में गलत परम्परा का निर्माण हो रहा है।

वस्तुत: शक्ति और शक्तिमान में कोई भेद नहीं है। गोस्वामी जी कहते हैं–

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।। *(मानस, १/१८)*

लंका की राजसभा में हनुमान ने रावण से कहा–

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया।।

(मानस, ५/२०/४)

माया ब्रह्माण्ड-समूहों की रचना नि:संदेह करती है, किन्तु किसके बल से? शक्ति तो परमात्मा की है इसलिए पूजा उन एक परमात्मा की ही करनी चाहिए। गीता के अनुसार देवी तो माया है, प्रकृति है जिससे बचना है, पार पाना है–

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। *(गीता, ७/१४)*

अर्जुन! यह त्रिगुणमयी मेरी अद्भुत माया दुस्तर है; किन्तु जो पुरुष मुझे ही निरन्तर भजते हैं, वे इस माया का पार पा जाते हैं। यह माया है तो दैवी, परन्तु अगरबत्ती जलाकर इसकी पूजा न करने लगें। हमें इसका पार पाना है, इसका अन्त करना है। इसे और भी स्पष्ट करते हुए भगवान कहते हैं कि–

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।। *(गीता, १३/१९)*

अर्जुन! यह प्रकृति और पुरुष दोनों को ही तू अनादि जान तथा सम्पूर्ण विकारों को त्रिगुणमयी प्रकृति से ही उत्पन्न हुआ जान। विकार से अधोगति मिलती है, पतन होता है न कि भगवान मिलते हैं। और प्रकृति को ही लोग देवी कहकर पूज रहे हैं! गीता में तो शक्ति शब्द का प्रयोग भी नहीं है। वह परमात्मा प्रकृति से परे है, आपके हृदय में है। उसे पाने का उपाय केवल एक परमात्मा की शरण है–

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

शरण जाने की विधि गीता का नियत आचरण है। जिसे करने से परमात्मा निम्नलिखित क्रम से विदित हो जाता है–

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।। *(गीता, १३/२२)*

वह पुरुष **'उपद्रष्टा'**– हृदय-देश में बहुत ही समीप– हाथ, पाँव, मन जितना आपके समीप है उससे भी अधिक समीप द्रष्टा के रूप में स्थित है। उसके प्रकाश में आप भला करें, बुरा करें, उसे कोई प्रयोजन नहीं है। वह साक्षी के रूप में खड़ा है। साधना का सही क्रम पकड़ में आने पर पथिक कुछ ऊपर उठा, उसकी ओर बढ़ा तो द्रष्टा पुरुष का क्रम बदल जाता है, वह **'अनुमन्ता'**– अनुमति प्रदान करने लगता है, अनुभव देने लगता है। साधना द्वारा और समीप पहुँचने पर वही पुरुष **'भर्ता'** बनकर भरण-पोषण करने लगता है, जिसमें आपके योगक्षेम की भी व्यवस्था कर देता है। साधना और सूक्ष्म होने पर वही **'भोक्ता'** हो जाता है। **'भोक्तारं यज्ञ तपसाम्'**– यज्ञ, तप जो कुछ भी बन पड़ता है, सबको वह पुरुष ग्रहण करता है। और जब ग्रहण कर लेता है, उसके बादवाली अवस्था में **'महेश्वरः'**– महान् ईश्वर के रूप में परिणत हो जाता है। वह प्रकृति का स्वामी बन जाता है; किन्तु अभी कहीं प्रकृति जीवित है तभी उसका मालिक है। इससे भी उन्नत अवस्था में वही पुरुष **'परमात्मेति चाप्युक्तो'**– जब परम से संयुक्त हो जाता है, तब **परमात्मा** कहलाता है। इस प्रकार शरीर में रहते हुए भी वह पुरुष आत्मा **'परः'** ही है, सर्वथा इस प्रकृति से परे ही है। अन्तर इतना ही है कि आरम्भ में वह द्रष्टा के रूप में था, क्रमशः उत्थान होते-होते परम का स्पर्श कर परमात्मा के रूप में परिणत हो जाता है।

इन कुरीतियों से बचने के लिए, धर्म की सही व्याख्या के लिए आप सब गीता भाष्य 'यथार्थ गीता' का अध्ययन व मनन करते रहें जिससे फिर कभी भ्रम न हो।

।। बोलिये श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय ।।

सबका धर्म एक : धर्म परिवर्तन होता ही नहीं

गीता में अर्जुन का मुख्य प्रश्न धर्म था। वह जाति धर्म और कुल धर्म को ही सनातन मानता था। भगवान ने इसे अज्ञान कहा, न यह कीर्ति देने वाला है न इससे कल्याण है। उन्होंने बताया कि आत्मा ही सनातन है, आत्मा की विशेषता बताया कि आत्मा अचिन्त्य है- जब तक चित्त और चित्त में संकल्पों की लहर है तब तक यह आत्मा हमारे दर्शन, प्रवेश और स्थिति के लिये नहीं है। इस पर अर्जुन ने कहा भगवान इस मन को तो मैं वायु से भी तेज चलने वाला मानता हूँ। इसे रोक पाना तो अत्यन्त कठिन है। भगवान ने कहा यह कठिन तो है किन्तु नियत कर्म के आचरण के अभ्यास और देखी सुनी वस्तुओं में राग के त्याग अर्थात वैराग्य से यह भली प्रकार वश में हो जाता है ।

(गीता 6-35)

अर्जुन ने पूछा कि योग करते-करते यदि किसी का मन चलायमान हो जाय तो वह नष्ट - भ्रष्ट तो नहीं हो जाता ? भगवान ने बताया की इस गीतोक्त नियत कर्म को करने वाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता बल्कि जिन वासनाओं को लेकर उसका मन चलायमान हुआ था उन्हें भोगकर वह पुण्यात्माओं के घर जन्म लेता है। वहाँ पूर्व शरीर में किये साधन को अनायास पुनः करते हुये अनेक जन्मों में परमगति पा लेता है। (यथार्थ गीता 6/45)

नियत कर्म का स्वल्प आचरण भी यदि करते बन गया तो प्रकृति में कोई क्षमता नहीं है कि उस कर्म को मिटा दें।इसमें सीमित फल रूपी दोष भी नहीं है कि करने वालों को सिद्धियों या स्वर्ग के प्रलोभन में उलझा कर छोड़ दे। आप यह साधन भले छोड़ दे, गीता का यह साधन आपका उद्धार करके ही छोड़ता है। (यथार्थ गीता 2/40) जब हर जन्म में आपको वही गीतोक्त साधन करने को मिलता है तो धर्म परिवर्तन कैसा? धर्म-परिवर्तन कभी होता ही नहीं। मन और इन्द्रियों को रोकने का साधन विश्व के सभी मनुष्यों के लिये एक जैसा है, इसी का उल्लेख गीता में है। आप सब इसका आचरण कर सकते हैं। विशेष जानकारी के लिए देखें "यथार्थ गीता" ।

आप हमारी वेबसाइट से इसे फ्री डाउनलोड कर सकते हैं :-

(www.yatharthgeeta.com)

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द जी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं- ५,
मोगरा लेन (रेलवे सब-वे के पास), अंधेरी (पूर्व), मुम्बई - 400069, भारत
दूरभाष- 022-28255300
ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com • वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com